चेन्नई घोषणापत्र

शिक्षा का बाजारीकरण खत्म करने
और
समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण करने के लिए
अखिल भारत सम्मेलन

(30 जून–01 जुलाई 2012) वल्लुवरकोट्टम, चेन्नई, तमिलनाडु

नवंबर 2012

शिक्षा अधिकार मंच, भोपाल
(अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच का सदस्य–संगठन)

इल्म बड़ी दौलत है

इल्म बड़ी दौलत है।
तू भी स्कूल खोल।
इल्म पढ़ा।
फीस लगा।
दौलत कमा।
फीस ही फीस।
पढ़ाई के बीस।
बस के तीस।
यूनिफार्म के चालीस।
खेलों के अलग।
वेरायटी प्रोग्राम के अलग।
पिकनिक के अलग।
लोगों के चीखने पर ना जा।
दौलत कमा।
उससे और स्कूल खोल।
उनसे और दौलत कमा।
कमाए जा, कमाए जा।
अभी तो तू जवान है।
यह सिलसिला जारी है।
जब तक गंगा–जमना है।
पढ़ाई बड़ी अच्छी है।
पढ़।
बहीखाता पढ़।
टेलीफोन डाइरेक्टरी पढ़।
बैंक–असेस्मेंट पढ़।
ज़रुरते–रिश्ता के इश्तेहार पढ़।
और कुछ मत पढ़।
मीर और गालिब मत पढ़।
इक़बाल और फैज़ मत पढ़।
इब्ने इंशा को भी मत पढ़।
वरना तेरा बेड़ा पार ना होगा।
और हममें से कोई
नताएज (परिणाम) का जिम्मेदार न होगा।

– इब्ने इंशा
एक पाकिस्तानी कवि

चेन्नई घोषणापत्र

शिक्षा का बाजारीकरण खत्म करने
और
समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण करने के लिए
अखिल भारत सम्मेलन

(30 जून–01 जुलाई 2012)

आयोजक

स्टेट प्लेटफ़ार्म फ़ॉर कॉमन स्कूल सिस्टम, तमिलनाडु

सहयोगी

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच

स्थल

वल्लुवरकोट्टम, चेन्नई, तमिलनाडु

शिक्षा अधिकार मंच, भोपाल
(अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच का सदस्य--संगठन)

चेन्नई घोषणापत्र

शिक्षा का बाजारीकरण खत्म करने और समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण करने के लिए अखिल भारत सम्मेलन (30 जून–01 जुलाई 2012)

आवरण एवं डिज़ाईन
कनक शशि, भोपाल

प्रथम संस्करण
नवंबर 2012 (1,000 प्रतियां)

प्रकाशन, वितरण एवं वित्तीय सहयोग
किशोर भारती
ई–8/29, सहकार नगर, भोपाल 462 039
ईमेल – kishorebharati.bhopal@gmail.com
फ़ोन – (0755) 2560438

संपर्क

1. अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच
   – रमेश पटनायक (हैदराबाद), संगठन सचिव (मो. : 9440980396)
   ईमेल – aifrte.secretariat@gmail.com
   – विक्रम अमरावत (अहमदाबाद), कार्यालय सचिव (मो. : 8128293711)
   ईमेल – vsamarawat@gmail.com
2. स्टेट प्लेटफ़ार्म फ़ॉर कॉमन स्कूल सिस्टम, तमिलनाडु
   पी. बी. प्रिंस गजेंद्र बाबू (चेन्नई), महासचिव (फ़ोन : 044–28341456)
   ईमेल – tnpcommonschool@gmail.com
3. शिक्षा अधिकार मंच, भोपाल
   शाहिद–उल–हुसैनी, संयुक्त सचिव (मो. : 9301569380)
   ईमेल – shikshaadhikaar.bhopal@gmail.com

मुद्रण
राजकमल ऑफ़सेट प्रिंटर्स,
15–सी, सेक्टर–जी, जे. के. रोड,
गोविंदपुरा, भोपाल, 462 022

सहयोग राशि
पंद्रह रुपए मात्र

भूमिका

चेन्नई में 30 जून–01 जुलाई 2012 को संपन्न जिस सम्मेलन में 'चेन्नई घोषणापत्र' पारित हुआ वह खुद ही कई मायनों में ऐतिहासिक था। संभवतः देश के आधुनिक इतिहास में शिक्षा नीति के मसले पर आयोजित यह सबसे बड़ा सम्मेलन था जिसमें 20 राज्यों/केंद्र–शासित प्रदेशों से लगभग 2,000 प्रतिनिधियों ने शिरकत की। इसमें मणिपुर और मेघालय तक से प्रतिनिधि आए जिसमें खासी भाषी तीन महिला कार्यकर्ता भी शामिल थीं। विशेष आमंत्रित वक्ताओं को छोड़कर अन्य सभी ने अपनी यात्रा के खर्चे का खुद इंतजाम किया। जाहिर है कि सबसे बड़ा प्रतिनिधि मंडल तमिलनाडु से था जिसमें राज्य के लगभग सभी जिलों का प्रतिनिधित्व था। कर्नाटक से 200 से ज्यादा प्रतिनिधि (अधिकतर विद्यार्थी), महाराष्ट्र से 100, बिहार से 80 और आंध्रप्रदेश से 50 के करीब प्रतिनिधि आए।

लेकिन इस सम्मेलन की ऐतिहासिकता केवल इसके आकार में नहीं वरन् इसकी विशद दृष्टि व इसके तौर–तरीकों में थी। आइए, इसके कुछ खास आयामों पर नजर डालें –

- सम्मेलन के लिए सारा धन तमिलनाडु की आम जनता से दान के रूप में जुटाया गया। इसके लिए कार्यकर्ताओं की टोलियों ने सड़कों पर और बसों व रेलगाड़ियों में घूमकर हैंडबिल बांटे और सम्मेलन का मकसद समझाया। एक भी पैसा सरकार या किसी देशी या विदेशी गैर–सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) से नहीं लिया गया।
- सम्मेलन की कार्रवाई का लगातार पांच भाषाओं में अनुवाद किया गया। इनमें से चार भाषाओं – तमिल, कन्नड़, हिंदी व अंग्रेजी – में अनुवाद के लिए बड़े–बड़े स्क्रीन लगाए गए जिनपर कंप्यूटर के जरिए अनुवादकों ने टाईप करके प्रस्तुति दी। पांचवीं भाषा मूक–बधिर प्रतिनिधियों की सांकेतिक भाषा थी जिसके लिए एक विशेषज्ञ तमिल महिला ने मंच पर बैठकर लगातार उंगलियों के जरिए अनुवाद करके सबको अभिभूत कर दिया। संसद तक में अनुवाद की ऐसी व्यवस्था नहीं है।
- हरेक सत्र का नाम देश के आधुनिक इतिहास में से किसी क्रांतिकारी विचारक, समाज सुधारक या शिक्षाविद के पीछे रखा गया जिसके लिए हर सत्र में उस व्यक्ति की आदमकद तस्वीर का अनावरण भी किया गया। इनमें सावित्रीबाई व जोतिराव फुले, गोखले, शहीद भगत सिंह, गांधी, आंबेडकर, पेरियार, सिंगारवेलार, गिजुभाई बधेका जैसे लोग शामिल थे।
- वक्ताओं और प्रतिनिधियों दोनों में हाशिए पर धकेली गई जातियों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं, विकलांगों, विभिन्न लैंगिक पहचान के लोगों और मजदूर साथियों की प्रेरणादायक भागीदारी रही।
- सारे आयोजन की जिम्मेदारी तमिलनाडु के विद्यार्थी संगठनों और समान स्कूल व्यवस्था के लिए संघर्षशील निजी स्कूलों के अभिभावक संघों ने मिलकर उठाई।

ऐसे सम्मेलन में पारित होने से 'चेन्नई घोषणापत्र' अपने–आप ऐतिहासिक दर्जा पा जाता है। हमें विश्वास है कि यह घोषणापत्र शिक्षा पर हो रहे नवउदारवादी हमले को पलटने और लोकतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करने की लड़ाई को नई दिशा देगा।

———————

चेन्नई सम्मेलन की दो छवियां

शिक्षा का बाजारीकरण खत्म करने और समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण करने के लिए अखिल भारत सम्मेलन

(30 जून व 01 जुलाई 2012)

आयोजक : स्टेट प्लेटफ़ार्म फ़ॉर कॉमन स्कूल सिस्टम, तमिलनाडु
सहयोग : अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच (अभाशिअम)
स्थान : वल्लुवरकोट्टम सभागार, नुंगमबाक्कम, चेन्नई, तमिलनाडु

चेन्नई घोषणापत्र

हम सब,

– विद्यार्थी, युवा, शिक्षक व महिला संगठनों, ट्रेड यूनियनों, अभिभावक संघों व स्कूल–स्तरीय समितियों;

– 6 साल से कम उम्र के बच्चों के लिए मुफ्त व सर्वांगीण शिशु देखभाल एवं पूर्व–प्राथमिक स्तर से बारहवीं कक्षा तक समतामूलक गुणवत्ता की पूरी तौरपर मुफ्त शिक्षा के मौलिक अधिकार और आगे उच्च व तकनीकी शिक्षा में समतामूलक अवसरों के लोकतांत्रिक अधिकार के संघर्ष में शामिल संगठनों; एवं

– दलितों, आदिवासियों, अन्य पिछड़े वर्गों, धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यकों, विकलांगों व विभिन्न लैंगिक पहचान के लोगों के लिए समान शैक्षिक अधिकारों और गरिमा के लिए लड़नेवाले समूहों;

के सदस्य और साथ में

विधिवेत्ता, समाजविज्ञानी, वैज्ञानिक, शिक्षाविद्, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रशासक, लेखक, कलाकार, पत्रकार, शोधार्थी, पेशेवर व अन्य बुद्धिजीवी;

जो देश के 20 राज्यों/केंद्र–शासित प्रदेशों से 30 जून से 1 जुलाई 2012 तक चेन्नई के वल्लुवरकोट्टम सभागार में आयोजित 'शिक्षा का बाजारीकरण खत्म करने और समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण करने के लिए अखिल भारत सम्मेलन' में मौजूद हैं और एकजुट होकर निम्नांकित घोषणापत्र को स्वीकारते हुए इसे आगे बढ़ाने का संकल्प लेते हैं।

इस अखिल भारत सम्मेलन के दौरान किए गए ऐतिहासिक, राजनीतिक–आर्थिक व नीतिगत विश्लेषण के आधार पर हमारा आग्रहपूर्वक कहना है कि,

1. ऐतिहासिक तौरपर शिक्षा, समाज के व्यापक और सामूहिक हित में बच्चों व युवाओं की सृजनात्मक व मानवीय क्षमताओं को उजागर करनेवाली सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया रही है। ऐसी शिक्षा, यथास्थिति को बरकरार रखने के बजाए, सामाजिक पुनर्निर्माण और बदलाव का काम करती है ताकि गणतंत्रात्मक व्यवस्था, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, मानवीय गरिमा, बहुलता, सामाजिक सामंजस्य और सार्वभौमिक शांति की सभ्यतागत आकांक्षाएं हासिल की जा सकें;
2. ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ आजादी की लड़ाई के दौरान विकसित हुए समृद्ध शैक्षिक विमर्श की विरासत से प्रेरणा लेते हुए भारत के संविधान का तकाजा है कि शिक्षा के माध्यम से ऐसी नागरिकता विकसित हो जो भारत को एक **"संप्रभुता–संपन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणतंत्र"** के रूप में स्थापित कर सके और संविधान में मौजूद सिद्धांतों व मूल्यों के अनुरूप समतामूलक, न्यायशील, बहुलतापूर्ण और प्रबुद्ध समाज का निर्माण कर सके और उसे टिकाऊ भी बना सके;
3. शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो जो जनपक्षी राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा दे सके और साथ ही बाजार द्वारा निर्देशित कारपोरेटीकृत विकास की नीतियों के खिलाफ प्रतिरोध पैदा करे। शिक्षा ऐसी भी हो जो भौतिक संसाधनों के समतामूलक बंटवारे और संपत्ति व उत्पादन के साधनों के केंद्रीकरण को खत्म करने के लिए जरूरी सक्षम अर्थव्यवस्था खड़ी करने की जन–आकांक्षाओं के पक्ष में जनमानस तैयार करे। साथ ही, शिक्षा के जरिए सामाजिक–सांस्कृतिक व ज्ञान–संबंधी विविधताओं के पनपने व गहराने के लिए समर्थक माहौल बन सके और संविधान द्वारा सुनिश्चित नागरिक स्वतंत्रता व लोकतांत्रिक अधिकारों को हासिल करने में मदद मिले;
4. संविधान ऐसी शिक्षा व्यवस्था पर पाबंदी लगाता है जो गैर–बराबरी, सामाजिक–आर्थिक स्तरीकरण (परतों में बांटना), पितृसत्ता, धार्मिक–सांस्कृतिक या भाषाई वर्चस्व, भेदभाव और सामाजिक सरोकारों से अलगाव को मजबूत करती हो;
5. संविधान ऐसी शिक्षा के निर्माण का आह्वान करता है जो असहिष्णुता, सांप्रदायिकता, फासीवादी सोच या किसी भी समुदाय, नस्ल, धर्म, लैंगिक पहचान, संस्कृति, भाषा या क्षेत्र के ऊपर किसी दूसरे, या फिर

विकलांगों के ऊपर 'सामान्य' शरीर के वर्चस्व के खिलाफ संघर्ष का मानस तैयार करे;

6. लिहाजा, भारत के संदर्भ में शैक्षिक गुणवत्ता का विचार उपरोक्त खाके से और संवैधानिक दृष्टि के अनुसार उभरना व परिभाषित होना चाहिए, न कि वैश्विक बाजार व नवउदारवादी अर्थव्यवस्था या सांप्रदायिक, विभाजनकारी व अन्य प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा निर्देशित हो;
7. जब तक शिक्षा का बाजारीकरण जारी रहेगा तब तक पूर्व–प्राथमिक स्तर से उच्च शिक्षा तक उपरोक्त परिभाषित शैक्षिक गुणवत्ता वाली जनपक्षी शिक्षा किसी भी प्रकार के शैक्षिक संस्थान में दे पाना नामुमकिन होगा, चाहे वह सरकारी हो या निजी;
8. जब तक सरकारी स्कूल व्यवस्था को बेहतर न बनाया जाए तब तक उपरोक्त खाके के अनुरूप हर वर्ग, जाति, धर्म, लिंग, भाषा व अंचल के या विकलांग बच्चों को भेदभाव से मुक्त समतामूलक शिक्षा दे पाने की तनिक भी संभावना नहीं है;
9. प्रत्येक बच्चे को समतामूलक शिक्षा देने के लिये जरूरी है कि 'राज्य',
    क) 6 साल से कम उम्र के बच्चों के लिए मुफ्त व सर्वांगीण शिशु देखभाल की व्यवस्था सुनिश्चित करे जिसमें पोषण, स्वास्थ्य, सामाजिक–मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक सुरक्षा की पुख्ता व्यवस्था भी शामिल हो, और साथ–साथ
    ख) पूर्व–प्राथमिक स्तर से बारहवीं कक्षा तक पूर्णतः सार्वजनिक वित्तपोषित **पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल व्यवस्था** के ऐतिहासिक विकल्प को इस तरह से लागू करे कि 18 साल तक के सभी बच्चों को बिना किसी भेदभाव के और पूरी तरह से मुफ्त ऐसी शिक्षा की गारंटी हो जो विषमताओं को खत्म करते हुए विविधताओं को शामिल करे। लेकिन इस ऐतिहासिक विकल्प को बाजारीकरण का खात्मा किए बगैर लागू नहीं किया जा सकता है;
10. स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा के बीच मूलभूत संबंध के मद्देनजर पूर्णतः सार्वजनिक वित्तपोषित **'समान स्कूल व्यवस्था'** का निर्माण इस तरह से करने की जरूरत है कि वह एक निश्चित समय सीमा के भीतर पूरी तरह सार्वजनिक वित्तपोषित **'समान शिक्षा व्यवस्था'** के रूप में विकसित हो ताकि 'के.जी. से पी.जी. तक' पूरी तरह से मुफ्त और समतामूलक शिक्षा की गारंटी दी जा सके;

11. सर्वांगीण शिशु देखभाल की व्यवस्था (पोषण, स्वास्थ्य और सुरक्षा समेत) सुनिश्चित करना और सभी बच्चों व युवाओं के लिए समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा देना 'राज्य' की संवैधानिक एवं नैतिक जवाबदेही है। यह भी तय है कि ऐसा करने के लिए जरूरी राजनीतिक, मानवीय, वित्तीय, तकनीकी व अन्य संसाधन जुटाने की व्यवस्था केवल 'राज्य' ही कर सकता है। इसलिए 'राज्य' को किसी भी हालत में यह जवाबदेही कारपोरेट या बाजार की ताकतों, धार्मिक संस्थाओं या एन.जी.ओ. को सौंपने की इजाजत नहीं दी जा सकती है; और

12. जब तक उपरोक्त समान शिक्षा व्यवस्था और साथ में जनता के जल–जंगल–जमीन, जीविका व ज्ञान पर मूलभूत अधिकारों को स्थापित और लागू नहीं किया जाता है तब तक, एक लोकतांत्रिक, प्रगतिशील व शांतिपूर्ण समाज और संप्रभुता–संपन्न राष्ट्र बतौर भारत के अस्तित्व पर निरंकुश नवउदारवादी पूंजी व लालची वित्तीय बाजार एवं साथ–साथ सांप्रदायिक, विभाजनकारी व अन्य प्रतिक्रियावादी ताकतों का खतरा मंडराता रहेगा।

ऐतिहासिक संदर्भ और परिप्रेक्ष्य

निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आज खड़े शिक्षा के संकट के ऐतिहासिक संदर्भ और परिप्रेक्ष्य को उजागर करते हैं –

- प्राचीन काल से ही, भारतीय उप–महाद्वीप के सर्वहारा व शोषित मेहनतकश वर्गों को हाशिए पर धकेली गई जातियों व उपजातियों में महज जन्म लेने, स्त्री होने अथवा शारीरिक या मानसिक विकलांगता पर आधारित कठोर संहिता के जरिए ज्ञान प्राप्त करने के अवसरों और गरिमामय जीवन जीने के अधिकार से व्यवस्थित तरीके से वंचित किया गया। इसके चलते एक बेहद स्तरीकृत (परतों में बंटी हुई) और गैर–बराबरी पर टिकी हुई पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हुआ। बौद्ध, जैन, चार्वाक और लोकायत जैसी कई समतामूलक विचारधाराओं व बौद्धिक प्रवृत्तियों की प्रेरणादायक विरासत व प्रभाव के बावजूद उक्त कठोर निर्देशात्मक संहिता उप–महाद्वीप में समाज के ढांचे को लंबे समय से वर्चस्वपूर्ण तरीके से निर्धारित करती रही है।
- इस संदर्भ में सामाजिक स्तरीकरण और ऊंच–नीच की पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था पर बौद्ध दर्शन ने सदियों से लगातार सवाल उठाकर

और साथ–साथ उच्च शिक्षा के संस्थान समेत अन्य प्रबुद्ध व समतामूलक शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करके ऐतिहासिक महत्व का योगदान दिया है।

- समाज में गहरी जड़ें जमाए पितृसत्तात्मक ढांचों ने महिलाओं के खिलाफ भेदभाव और हिंसा को विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों, अंचलों व संस्कृतियों में बढ़ावा दिया है।
- संवेदनहीनता, इस अन्यायपूर्ण विषमतामूलक सामाजिक व्यवस्था का एक खास लक्षण रही है जिसके चलते विकलांगों को न केवल अभागा समझा गया बल्कि उन्हें इंसान से कमतर मानकर उपहास का पात्र भी बनाया जाता रहा है।
- पूरे इतिहास के दौरान समय–समय पर गरिमापूर्ण जीवन जीने और प्राकृतिक संसाधनों व ज्ञान में समतामूलक व न्यायपूर्ण सहभाग का हकदार बनने के लिए उप–महाद्वीप के विभिन्न अंचलों में मेहनतकश आवाम के अलग–अलग तबकों ने उत्पीड़क ताकतों को अपने स्वतः स्फूर्त व संगठित संघर्षों से चुनौती दी और प्रतिरोध किया।
- ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने इस उप–महाद्वीप के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों, उत्पादक क्षमताओं और ज्ञान के विविधतापूर्ण स्वरूपों के औपनिवेशिक शोषण के लिए सामाजिक स्तरीकरण व दमन की इन ऐतिहासिक संरचनाओं को और भी मजबूत किया जिसके चलते आम जनता की बढ़ती हुई बदहाली की कीमत पर ब्रिटिश पूंजी का विकास हो पाया।
- मैकॉले ने 1835 के अपने प्रतिवेदन में ब्रिटिश राज के हित में ऐसी शिक्षा नीति की नींव रखी जिसने भारतीय भाषाओं और ज्ञान की अवमानना की, औपनिवेशिक *'निर्देशन'* (न कि *'शिक्षण'*) के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का वर्चस्व कायम किया और संसाधनों की कमी का बहाना बनाते हुए तय किया कि "एक ऐसा वर्ग खड़ा किया जाए जो करोड़ों हिंदुस्तानियों, और उनपर शासन कर रहे हम लोगों के बीच बिचौलिए (दुभाषिए) का काम कर सके – एक ऐसा वर्ग जिसका खून और रंग तो हिंदुस्तानी हो, लेकिन जो अपनी पसंदगी, सोच, नैतिकता और बौद्धिकता में अंग्रेजों जैसा हो . . .।"
- मैकॉले के नीतिगत खाके को सिरे से खारिज करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की तलाश के बीज आजादी की लड़ाई के इतिहास में बोए गए। 19वीं शताब्दी के मध्य से ही महात्मा जोतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले ने समाज में वर्ग और वर्ण पर आधारित स्तरीकरण को बढ़ाने में ब्रिटिश शिक्षा की भूमिका पर तीखे सवाल खड़े किए और शिक्षा के अवसर, शिक्षा

के भाषाई माध्यम, पाठ्यचर्या के उद्देश्य और सामाजिक संबंधों को पुनर्परिभाषित करने में 'राज्य' की महत्वपूर्ण भूमिका को स्थापित करने का आग्रह किया। हालांकि 1880 के दशक में ही दादाभाई नौरोजी ने सार्वभौमिक (लोकव्यापी) प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे को उठाया था, लेकिन पहली बार 1911 में मुफ्त व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को एक *अधिकार* के तौरपर देनेवाला कानून बनाने की मांग गोखले ने रखी। 20वीं सदी के शुरूआती दौर में कोल्हापुर, गोंडल, बड़ौदा, भोपाल, और त्रावनकोर की रियासतों ने मुफ्त प्राथमिक और/या माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक (लोकव्यापी) बनाने के लिए स्कूल व्यवस्थाओं की स्थापना की या उनको यथोचित समर्थन दिया। 20वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध गांधी, टैगौर और ज़ाकिर हुसैन जैसे दूरदर्शी चिंतकों द्वारा शिक्षा के पुनर्निमाण के लिए किए गए महत्वपूर्ण प्रयासों के लिए जाना जाता है। उन्होंने शिक्षा को औपनिवेशिक मानस से मुक्ति दिलाने, सांस्कृतिक संवेदना बढ़ाने, सामाजिक समरसता कायम करने और ब्रिटिश राज द्वारा थोपे गए पूंजीवादी शोषण पर टिके विकास के मॉडल की जगह विकास के एक वैकल्पिक मॉडल के पुनर्निर्माण के माध्यम के रूप में देखा। इसी दौरान शहीद भगतसिंह ने सांस्कृतिक और साहित्यिक नवजागरण में मातृभाषा की ऐतिहासिक भूमिका के महत्व को उजागर करते हुए शिक्षा के पुनर्निर्माण को समाजवादी भारत बनाने के लिए जरूरी माना। डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने 1930 के दशक की शुरूआत में गांधी के साथ हुई बहस के दौरान भारत में शिक्षा पर उभर रहे विमर्श में वर्ग और वर्ण के परिवर्तनकामी सवालों को उठाया। डॉ. आंबेडकर ने समानता और सामाजिक न्याय के मुद्दों को इस विमर्श के केंद्र में रख कर शिक्षा की राजनीति को एक नई दिशा दी। इस लम्बे दौर में सैय्यद अहमद खान, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, भोपाल रियासत की बेगमों (क्रमशः सिकंदर बेगम, शाहजहां बेगम और सुल्तानजहां बेगम), मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, कर्मवीर भाऊराव पाटिल और अन्य कई समाज सुधारकों व शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए स्कूलों व कालेजों का निर्माण किया, अक्सर जन सहयोग से। लेकिन 19वीं व 20वीं सदी में सामाजिक स्तरीकरण को चुनौती देने, अतार्किक परम्पराओं व व्यवहार का प्रतिरोध करने और शिक्षा को समाज के आधुनिकीकरण के माध्यम के तौरपर स्थापित करने के लिए जनचेतना जुटाने का काम कंडुकुरी वीरसालिंगम (आंध्र प्रदेश), नारायण गुरू (केरल), आयोथि थस्सर (तमिलनाडु), गुराजादा अप्पाराव (आंध्र प्रदेश), सिंगारवेलार और पेरियार (तमिलनाडु) जैसे विचारकों और पथप्रदर्शकों द्वारा लीक से हटकर उठाए

गए सवालों एवं उनकी वैज्ञानिक सामाजिक दृष्टि के कारण ही संभव हो पाया।

- स्पष्ट है कि समानता, सामाजिक न्याय और गरिमा के साथ सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य स्कूली शिक्षा और साथ में उच्च शिक्षा के भी संवैधानिक व लोकतांत्रिक अधिकार की मांग और सामाजिक–आर्थिक बदलाव में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका के विचार की जड़ें देशभर में चली आजादी की लड़ाई के इतिहास में हैं।
- इस तरह आजादी की लड़ाई से उभरे शैक्षिक विमर्श की यह समृद्ध और बहुआयामी विरासत बाद में डॉ. आंबेडकर के दूरदर्शी नेतृत्व में संविधान के शिक्षा–संबंधी प्रावधानों को गढ़ने के लिए बुनियादी विचारों का स्रोत बनी। दरअसल, संविधान में स्वीकारी गई शिक्षा की परिवर्तनकामी अवधारणा के सहारे हमारे विविधतापूर्ण देश का एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, न्यायशील और प्रबुद्ध समाज के रूप में पुनर्निमाण करने का रास्ता खुल गया है।

आजादी के बाद का काल

आजाद भारत के पहले केंद्रीय शिक्षा मंत्री के तौरपर मौलाना अबुल कलाम आजाद ने सन् 1948 में बी.जी. खेर समिति का गठन किया जिसको मुफ्त एवं अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण (लोकव्यापीकरण) के तौर–तरीकों पर अपनी सिफारिश देने का काम सौंपा। मौलाना आजाद ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.), आई.आई.टी., अध्यापक शिक्षण के लिए केंद्रीय शिक्षा संस्थान और संगीत, विविध ललित कलाओं व भारतीय भाषाओं में साहित्य के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न केंद्रीय संस्थानों के जरिए एक राष्ट्रीय संस्थानिक ढांचे का विचार गढ़ने एवं उसे खड़ा करने की पहलकदमी की। जवाहरलाल नेहरू ने वैज्ञानिक मानस के लिए शिक्षा की अहमियत पर विशेष बल दिया और शिक्षा के आधुनिकीकरण के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों को प्रोत्साहित किया। उसी दौरान ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद और के. कामराज, जो क्रमशः केरल और तमिलनाडु के मुख्यमंत्री थे, ने सरकारी स्कूल व्यवस्था को मजबूत करने और प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण (लोकव्यापीकरण) के लिए कई प्रगतिशील कदम उठाए। इस दूरदर्शितापूर्ण शुरूआत के बावजूद **कोठारी आयोग** (1964–66) – पहला आयोग जिसे प्रारम्भिक शिक्षा (कक्षा 1–8) के सवाल पर विचार करने का काम सौंपा गया – का गठन देश की आजादी के 17 साल और संविधान के अनुच्छेद 45 में 14 साल तक के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने की तयशुदा समय सीमा पूरी होने के 4 साल बाद ही हो सका। बहरहाल, शिक्षा पर

बनीं तीन राष्ट्रीय नीतियों (1968, 1986 व 1992) और विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित/समर्थित बहु–प्रचारित दो कार्यक्रमों यथा, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (1993–2002) व सर्व शिक्षा अभियान (2000–2010) के बावजूद महज आठ साल की प्रारम्भिक शिक्षा से संबंधित आयु समूह के लगभग आधे बच्चे आज भी वंचित हैं। जो बच्चे पहली कक्षा में दाखिला पाते हैं, उनमें से मात्र 15–17 फीसदी बच्चे 12वीं कक्षा को पार कर पाते हैं। चूंकि उच्च शिक्षा और पेशेवर व व्यावसायिक कोर्सों में दाखिले के लिए अर्हता 12वीं कक्षा की है, इसलिए बहुतांश बच्चे आधुनिक अर्थव्यवस्था में उपलब्ध जीविका के साधनों से वंचित कर दिए जाते हैं। अगर इन्हीं आंकड़ों को धर्मवार और जातिवार बांटकर देखा जाए तो स्थिति और भी बदहाल नजर आएगी। पिछड़े वर्ग के बमुश्किल 10–11 फीसदी, मुस्लिम समाज के 9 फीसदी, अनुसूचित जातियों के 8 फीसदी और अनुसूचित जनजातियों के महज 6 फीसदी बच्चे ही कक्षा 12वीं की बाधा को लांघ पाते हैं। इसका मतलब है कि 92 फीसदी दलित और 94 फीसदी आदिवासी आरक्षण के द्वारा खड़ी की गई सामाजिक न्याय की व्यवस्था की दहलीज तक भी नहीं पहुंच पाते हैं।

यह गहरी चिंता का विषय है कि योजना आयोग व मानव संसाधन विकास मंत्रालय (या राज्यों/केंद्र–शासित प्रदेशों के समकक्ष निकायों) में विभिन्न शैक्षिक नीतियों और कार्यक्रमों की लगातार विफलता के कारणों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण का सर्वथा अभाव रहा है, कम–से–कम सार्वजनिक रूप से तो उपलब्ध नहीं हुआ है। शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 भी इसी सिलसिले की एक और कड़ी सिद्ध हो रही है। यह बिल्कुल साफ है कि तमाम सरकारों ने, चाहे वह किसी भी राजनैतिक धारा की हों, नीतिगत विफलताओं से कोई सबक नहीं सीखा हालांकि सबक सीखने की अपेक्षा एक लोकतांत्रिक सरकार से की जाती है। इसके ठीक उलट, सबसे निकृष्ट विकल्प अपनाते हुए, शासक राजनीतिक वर्ग ने, एक ओर, कारपोरेट पूंजी के हितों को ध्यान में रखकर शिक्षा के बाजार को बढ़ावा दिया और वहीं, दूसरी ओर, देश के बहुसंख्यक बच्चों को उनके समतामूलक शिक्षा के अधिकार से वंचित किया।

शिक्षा पर नवउदारवादी हमला

शिक्षा के क्षेत्र में नवउदारवादी नीतियों के सामने भारतीय 'राज्य' द्वारा घुटने टेके जाने की पहली झलक 1985 में दिखी जब शिक्षा मंत्रालय का नाम बदल कर मानव संसाधन विकास मंत्रालय रख दिया गया। इसके मायने थे शिक्षा के उद्देश्य में ही बदलाव। यानी, अब शिक्षा, संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप सामाजिक विकास और नागरिकता निर्माण नहीं बल्कि वैश्विक बाजार के लिए कुशल

लेकिन गुलाम कामगार फौज तैयार करेगी। इसके बाद शिक्षा व्यवस्था में नवउदारवादी नीतियों के ढांचे की विधिवत नींव राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 में संशोधित) द्वारा रखी गई। इस नीति ने आजादी के बाद पहली बार भेदभावपूर्ण बहुपरती शिक्षा व्यवस्था का प्रस्ताव रखा जिसके अंतर्गत मुख्यधारा की सरकारी स्कूल व्यवस्था से **निचले पायदान** पर घटिया दर्जे के लगभग 3 लाख औपचारिकेतर (नॉन–फ़ार्मल) शिक्षा केंद्रों की परत और उसके **ऊपर के पायदान** पर एक परत अभिजात्य नवोदय स्कूलों, हर जिले के लिए एक, की बिछाई गई। इस तरह पहली बार यह नीतिगत घोषणा कर दी गई कि देश के आधे से ज्यादा बच्चे (जो उस समय कक्षा 8 तक की प्रारंभिक शिक्षा से वंचित थे) कभी भी नियमित स्कूलों में नहीं बल्कि घटिया दर्जे के औपचारिकेतर (नॉन–फ़ार्मल) शिक्षा केंद्रों में पढ़ेंगे। इसी तरह नवोदय स्कूलों के जरिए पहली बार सरकारी स्कूल व्यवस्था में प्रवेश की मेरिट–आधारित चयन प्रक्रिया को अपनाया गया जो उच्च वर्गों और वर्णों के वंशानुगत सामाजिक विशेषाधिकार की संरचनाओं में अवस्थित होने के कारण समाजशास्त्रीय और शिक्षाशास्त्रीय दोनों दृष्टियों से बेहद आपत्तिजनक थी। उच्च शिक्षा में नवउदारवादी एजेंडे की शुरूआत करने के लिए उक्त नीति ने स्वायत्तता के नाम पर कालेजों के निजीकरण व अभिजात्यकरण को बढ़ावा देने के कदम उठाए।

1990 के दशक में अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष व विश्व बैंक द्वारा थोपे गए 'संरचनात्मक समायोजन' की पूर्वशर्त थी कि शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण के क्षेत्रों में सरकारी खर्च घटाया जाए। इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' (डी.पी.ई.पी.) के अंतर्गत कई कदम उठाए गए। इनमें से प्रमुख हैं : (क) नियमित शिक्षकों की जगह कमतर अर्हता के अप्रशिक्षित और कम वेतन पर अल्पकालीन ठेके पर नियुक्त किए गए शिक्षक ('पैरा–टीचर'); (ख) एक ही शिक्षक द्वारा एक ही कमरे में एक से अधिक कक्षाओं का अध्यापन ('बहु–कक्षाई अध्यापन'); (ग) भेदभाव पर आधारित बहुपरती स्कूल व्यवस्था को बढ़ावा देना; (घ) पाठ्यचर्या को साक्षरता और अंक ज्ञान तक सीमित कर देना; और (च) सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) के अनुपात में शैक्षिक बजट के आबंटन में लगातार कटौती करना।

लगभग 18 राज्यों में और कुल मिलाकर देश के आधे से ज्यादा जिलों में लागू उक्त 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' (डी.पी.ई.पी.) ने महज दस साल में ही अपने एजेंडे के अनुरूप सरकारी स्कूल व्यवस्था की गुणवत्ता को नष्ट करने का काम 'सफलतापूर्वक' संपन्न कर दिया जिससे सरकारी स्कूलों की सार्वजनिक विश्वसनीयता बुरी तरह प्रभावित हुई। इसके चलते 1990 के दशक के अंत तक,

जैसा कि भारत की शिक्षा व्यवस्था में विश्व बैंक के हस्तक्षेप का असली मकसद था, देशभर में निजी स्कूलों के लिए तेजी से फैलता हुआ बाजार खुल गया। सन् 2000 में डी.पी.ई.पी. की गड़बड़ियों व कमियों का पुलिंदा 'सर्व शिक्षा अभियान' के एक नए चमकदार लेबल के साथ जनता को भ्रमित करने के लिए पेश किया गया। मार्च 2010 में जब यह अभियान खत्म हुआ तब तक सरकारी स्कूलों की विश्वसनीयता पूरी तरह खत्म हो चुकी थी जबकि स्कूलों में दाखिला पाने से वंचित और दाखिला पाए हुए बच्चों को स्कूल में टिकाए रखने की दोनों समस्याएं जस–की–तस बनी रहीं। उक्त बुनियादी सवालों को नजरंदाज करते हुए, नवउदारवादी एजेंडे की अगली कड़ी में, भारी हो–हल्ले के साथ शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 लाया गया। इसके तहत स्कूलों में शिक्षक–संबंधी, अधोसंरचना–संबंधी व शैक्षिक सुविधाओं के लिए जो न्यूनतम मानदंड तय किए गए वे मोटे तौरपर डी. पी. ई. पी. और 'सर्व शिक्षा अभियान' के घटिया मानदंडों के ही समकक्ष थे। इसके अलावा स्कूल व्यवस्था पूर्ववत भेदभावपूर्ण और बहुपरती बनी रहेगी, कानून के विभिन्न प्रावधानों का यही निहितार्थ था। यानी, यह कानून, 'राज्य' द्वारा वित्तपोषित पड़ोसी स्कूल पर टिकी हुई समान स्कूल व्यवस्था की चिरप्रतीक्षित जन–आकांक्षाओं के ठीक उलट था। यह भी चल जाता यदि कानून में निजी स्कूलों को मुट्ठी भर वंचित बच्चों[1] के नाम पर '25 फीसदी कोटे' के बहाने सरकारी खजाने से फीस प्रतिपूर्ति करने का प्रावधान नहीं होता। फीस प्रतिपूर्ति की यह व्यवस्था, जो पी.पी.पी. का ही एक रूप है, और साथ में निजी स्कूलों को मनमानी ढंग से अनियंत्रित फीस बढ़ोतरी की छूट, कानून में शिक्षा के बाजारीकरण को तेज करनेवाले छिपे या अलिखित एजेंडे के ही सबूत हैं। ऐसा प्रावधान एक तरह से निजी स्कूलों के मुकाबले सरकारी स्कूलों को 'घटिया' मान लेने की बहुप्रचारित आम धारणा का न केवल चतुर वैधानिकरण है वरन् घोषणा भी है कि वे हमेशा के लिए 'घटिया' ही रहेंगे। यानी, यह कानून 'राज्य' के समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा सुनिश्चित करने की अपनी संवैधानिक जवाबदेही से पीछे हटने के नवउदारवादी एजेंडे को वैधानिक बना देता है। दरअसल, कानून का असली मकसद बच्चों को समतामूलक गुणवत्ता की मुफ्त शिक्षा का मौलिक अधिकार देना तो कतई नहीं था वरन् कारपोरेट घरानों, स्वंयसेवी संगठनों (एन.जी.ओ.) और धार्मिक संस्थाओं

---

[1]यह विडंबना ही है कि कानून का पूरा क्रियान्वयन होने पर भी इस प्रावधान के तहत निजी स्कूलों में दाखिला पानेवाले बच्चे 6–14 आयु–समूह के 6–7 फीसदी से अधिक नहीं हो सकते जबतक कि या तो निजी स्कूलों की संख्या में भारी इजाफा न हो या सरकारी स्कूलों को निजी स्कूलों में तबदील न कर दिया जाए। पी.पी.पी. की वर्तमान नीतियां स्कूली शिक्षा के बाजारीकरण की रफ्तार तेज करने के लिए उपरोक्त दोनों रास्ते अपना रही हैं जिसके पक्ष में जनमत जुटाने के लिए सरकार के हाथ में '25 फीसदी कोटे' का प्रावधान खुद ही एक कारगर साधन बन गया है।

को निजी स्कूलों के जरिए बेलगाम मुनाफाखोरी करने का अधिकार देना था जो दे दिया गया है।

स्कूली शिक्षा की उपरोक्त बदहाली का नकारात्मक असर 'राज्य' द्वारा वित्तपोषित उच्च शिक्षा पर भी पड़ा है। चूंकि उच्च शिक्षा में संबंधित आयु समूह (18–24 वर्ष) के मात्र 12 फीसदी बच्चे ही पहुंच पाते हैं, इसलिए 'राज्य' विश्व बैंक के इस दोषपूर्ण सिद्धांत को स्थापित करने में कामयाब रहा है कि उच्च शिक्षा एक 'निजी उपभोग' की वस्तु है जिसकी 'कीमत हर उपभोक्ता को चुकानी' ही पड़ेगी। विश्व बैंक द्वारा प्रचारित इस सिद्धांत के साथ संसाधनों की कमी का चिरपरिचित मिथक जोड़कर ज्ञान को एक 'बिकाऊ माल' में तबदील करने की पुख्ता जमीन तैयार की जा रही है। सन् 2005–06 में विश्व व्यापार संगठन के 'व्यापार और सेवाओं पर सामान्य समझौते' ('गैट्स') के तहत सरकार ने उच्च शिक्षा की जो पेशकश की थी उसके तहत संसद में उच्च शिक्षा–संबंधी विधेयकों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की जा चुकी है ताकि उच्च शिक्षा के कारपोरेटीकरण और विदेशी निवेश के लिए जरूरी कानूनी ढांचा तैयार किया जा सके। इन सबके चलते उच्च शिक्षा की कीमत न सिर्फ देश के 90 फीसदी लोगों की औकात के बाहर हो जाएगी बल्कि लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, न्यायशील और प्रबुद्ध समाज बनाने के शैक्षिक उद्देश्य भी विकृत हो जाएंगे। इन नीतियों के चलते हमारे कालेजों और विश्वविद्यालयों के परिसरों में लोकतांत्रिक गुंजाईश और अभिव्यक्ति की आजादी भी तेजी से सीमित या खत्म की जा रही है। जाहिर है कि सरकार, उच्च शिक्षा संस्थानों में विद्यार्थियों और शिक्षकों के 'अराजनीतिकरण' का एजेंडा, अपने सबसे विकृत रूप में, पूरे धड़ल्ले से थोप रही है।

सार्वजनिक–निजी–भागीदारी (पी.पी.पी.) के माध्यम से स्कूल और उच्च शिक्षा, दोनों क्षेत्रों में ही निजीकरण और बाजारीकरण को नीतिगत समर्थन बढ़ाया जा रहा है। पी.पी.पी. के जरिए शिक्षा में खुलकर मुनाफा कमाने वाले कारपोरेट घरानों, स्वंयसेवी संगठनों (एन.जी.ओ.) और धार्मिक संस्थानों को सार्वजनिक संपदा और संसाधन (बेशकीमती जमीनों समेत) सौंपे जा रहे हैं। इस प्रक्रिया को मजबूत करने के लिए परोक्ष तौरपर भी अनेक कदम उठाए गए हैं, जैसे कि छठे वेतन आयोग में सरकारी कर्मचारियों के लिए अपने बच्चों को महंगे निजी स्कूलों या उच्च शिक्षा संस्थानों में पढ़ाने के लिए विशेष भत्तों का प्रावधान और सरकारी संस्थानों को बेहतर बनाने के बजाए निजी संस्थानों में पढ़नेवाले अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों की फीस प्रतिपूर्ति की व्यवस्था एवं विद्यार्थियों के लिए सस्ती दरों पर कर्ज की व्यवस्था। इसी तर्ज

पर, शिक्षा अधिकार कानून, 2009 में भी '25 फीसदी कोटे' के तहत निजी स्कूलों को सार्वजनिक धन स्थानांतरित करने की व्यवस्था कर दी गयी है, बजाए इसके कि इसी धन को उन सरकारी स्कूलों की बेहतरी के लिए लगाया जाता जहां अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों व अल्पसंख्यकों के अधिकांश बच्चे पढ़ते हैं।

भ्रामक मान्यताएं

शिक्षा के नवउदारवादी नीतिगत खाके को चंदेक निहायत भ्रामक मान्यताओं के आधार पर न्यायोचित ठहराया जा रहा है, यथा,

- चूंकि राज्य की आर्थिक क्षमता सीमित है इसलिये शिक्षा के वित्तपोषण के लिए घरेलू व विदेशी निजी पूंजी निवेशकों पर निर्भर होने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचा है;
- शिक्षा एक अधिकार नहीं है बल्कि एक 'सेवा' है, इसलिए सबके लिए समतामूलक अवसर सुनिश्चित करने का सवाल ही नहीं उठता। शैक्षणिक गुणवत्ता भी हर व्यक्ति की उसकी कीमत चुकाने की आर्थिक हैसियत के अनुपात में ही होगी; और
- शिक्षा एक 'बिकाऊ माल' है जिसका मुनाफे के लिए व्यापार करना दूसरे किसी भी व्यापार की तरह पूरी तरह से वैधानिक है।

नवउदारवादी एजेंडे ने शिक्षा के चरित्र और उद्देश्य को पूरी तरह से बदल दिया है। अब शिक्षा का मकसद सामाजिक बदलाव होने के बजाए कारपोरेट बाजार की जरूरतों के मुताबिक मानव संसाधन तैयार करना बन चुका है। इसलिए, अब शिक्षा का चरित्र, सामाजिक विकास, सामाजिक कल्याण या विषय ज्ञान की जरूरतों से नहीं बल्कि मांग और पूर्ति के हिसाब से तय होगा। इन विकृतियों के चलते यह गलत धारणा बन रही है कि,

- सार्वजनिक संस्थाओं की तुलना में कारपोरेट सिद्धांतों के अनुसार अधिक कार्य कुशल होने के कारण निजी संस्थाएं बेहतर शिक्षा प्रदान करती हैं; और
- समानता और सामाजिक न्याय के संवैधानिक सिद्धांतों की जगह तथाकथित 'समावेशन' (यानी, 'इन्क्ल्यूज़न') का नवउदारवादी सिद्धांत ले सकता है। 'समावेशन' के सिद्धांत के चलते बाजार के वर्चस्वशाली मॉडल को आदर्श मॉडल होने की मान्यता मिल जाती है। इसके फलस्वरूप विभिन्न व विविधतापूर्ण उत्पादक, सामाजिक–सांस्कृतिक और विचारधारात्मक धाराओं के लिए जरूरी हो जाता है कि वे भी

बाजार द्वारा निर्धारित उक्त आदर्श मॉडल के अनुरूप ढल जाएं। इसकी तुलना में समानता व सामाजिक न्याय के सिद्धांतों की दरकार है कि लोकतांत्रिक दायरों एवं विश्लेषण, बहस व रचनात्मक सोच के लिए समर्थक माहौल का निर्माण हो और तमाम विविधताओं के बीच बराबरी के आधार पर संवाद चलाने के लिए जरूरी संस्थानों की स्थापना हो।

हमारे संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए यह एकदम जरूरी हो गया है कि जनमानस से व्यापक व व्यवस्थित संवाद के जरिए नवउदारवादी एजेंडे की उपरोक्त भ्रामक मान्यताओं को ध्वस्त करना, शिक्षा आंदोलन का एक केंद्रीय सरोकार बने।

संघर्ष का भावी कार्यक्रम

चेन्नई में आयोजित इस अखिल भारत सम्मेलन को तमिलनाडु के विभिन्न हिस्सों से आए प्रतिनिधियों की मौजूदगी में आयोथि थस्सर (अयोध्या दासर), सिंगारवेलार और पेरियार जैसे द्रष्टाओं व चिंतकों के नेतृत्व में चलाए गये उत्पीड़ित वर्गों व वर्णों के ऐतिहासिक जनांदोलनों से बेहद प्रेरणा का अहसास हो रहा है। इन आंदोलनों ने, बौद्ध तर्कवाद का अनुसरण करते हुए, समानता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को, जिसमें सामाजिक लैंगिक समानता और नारी मुक्ति का मुद्दा भी शामिल था, राज्य के सामाजिक–राजनीतिक एजेंडे का केंद्रबिंदु बनवा दिया। आजादी के एकदम बाद के दशकों में तमिलनाडु में इसी नींव पर 'राज्य'–वित्तपोषित एक ऐसी स्कूली शिक्षा व्यवस्था कायम की गई जिसमें समान स्कूल व्यवस्था के रूप में उभरने की पूरी संभावना थी। राज्य की स्कूल व्यवस्था में जिस तरह से वर्ग– या वर्ण–आधारित भेदभाव और सामाजिक–सांस्कृतिक व आर्थिक बाधाओं को खत्म करने के साथ–साथ निःशुल्क शिक्षा, मध्याह्न भोजन, मुफ़्त पोशाक व किताबें और मातृभाषा में शिक्षा जैसे प्रगतिशील कदम उठाने के लिए नीतिगत फैसले लागू किए गए, उससे तमिलनाडु की शिक्षा नीतियां पूरे देश के लिए एक मिसाल बन गईं। इस संदर्भ में यह सम्मेलन, 1950 के दशक में स्कूली शिक्षा के सार्वभौमिकरण (लोकव्यापीकरण) के लिए तत्कालीन मुख्यमंत्री स्वर्गीय कामराज द्वारा अपनाई गई नीतियों का तहेदिल अभिनंदन करता है।

यह सम्मेलन इस तथ्य पर गंभीर चिंता जाहिर करता है कि हालिया दशकों में तमिलनाडु सरकार द्वारा अपनाई जा रही अभिजात्य व नवउदारवादी नीतियों के चलते पहले की उपरोक्त उपलब्धियां लगातार शिथिल या खत्म हुई हैं। राज्य

में एक से अधिक परीक्षा मंडलों के उभरने से भेदभाव और शिक्षा से वंचित करने की जमीन तैयार हुई है। पिछले कुछ सालों से निजी स्कूल लॉबी इतनी मजबूत *हो गई है कि वह न सिर्फ राज्य सरकार पर अपनी शर्तें थोप रही है बल्कि खुलकर कोर्ट के आदेशों तक को ठेंगा दिखा रही हैं। **यह सम्मेलन तमिलनाडु सरकार से आग्रह करता है कि वह तत्काल प्रभाव से निजीकरण और बाजारीकरण की अपनी वर्तमान नीतियों को पलट कर प्रदेश की जनता के साथ हाथ मिलाते हुए राज्य की पूर्व की प्रगतिशील, समतामूलक और भेदभावरहित स्कूल व्यवस्था को पुनर्स्थापित करे। इसके अलावा, सम्मेलन यह भी मांग करता है कि तमिलनाडु सरकार स्कूली शिक्षा के बाजारीकरण को खत्म करने और पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण करने के लिए खुद का एक नया शिक्षा अधिकार कानून पारित करे, जो अन्य राज्य सरकारों पर भी ऐसा करने का दबाव बनाए।***

तमिलनाडु के उपरोक्त अनुभव और महत्व को स्वीकारते हुए हम अपने भावी देशव्यापी संघर्षों के लिए निम्नलिखित तीन–स्तरीय विशद कार्यक्रम को अंगीकार करते हैं –

- **शिक्षा के बाजारीकरण का खात्मा।**
- **पूर्व–प्राथमिक से बारहवीं कक्षा तक पूरी तरह 'राज्य'–वित्तपोषित पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल व्यवस्था की स्थापना।**
- **शैक्षिक बदलाव के लिये जनांदोलन का निर्माण।**

1. शिक्षा के बाजारीकरण का खात्मा

हम जानते हैं कि आजादी की लड़ाई के दौरान व आजादी के बाद के 2–3 दशकों में निजी शैक्षिक संस्थानों को खोलने के पीछे जो लोकहितकारी मकसद था और समाज कल्याणकारी भावना काम कर रही थी वह अब पूरी तरह गायब हो चुकी है। नवउदारवाद के उदय के बाद, नीति बतौर निजीकरण की बढ़ती हुई रफ्तार शिक्षा के बाजारीकरण से पूरी तरह जुड़ गई है। निजी शैक्षिक संस्थानों के चरित्र में यह बदलाव नए–नए शैक्षिक बाजारों को तलाश रही वित्तीय पूंजी के लालच को उजागर करता है।

इसलिए हम यह संकल्प लेते हैं कि,

- 'के.जी. से पी.जी. तक' शैक्षिक संस्थाओं के निजीकरण को बढ़ावा देने वाली सभी नीतियों का विरोध करेंगे।

- फीस लेने वाली सभी तरह की मौजूदा शैक्षिक संस्थाओं के 'राज्य' द्वारा नियमन और मॉनिटरिंग करने और विधिवत रूप से अधिकारप्राप्त शिक्षक और अभिभावक संघों द्वारा इन पर निगरानी रखने के कानूनी प्रावधान खड़ा करने के लिए संघर्ष करेंगे।
- (क) शिक्षा और जनता के अन्य मूलभूत अधिकारों के संदर्भ में विश्व बैंक के 'उपभोक्ता द्वारा कीमत चुकाने' के सिद्धांत; (ख) शिक्षा के जरिए मुनाफा कमाने के विचार; और (ग) शिक्षा को निजी उपभोग की वस्तु (माल) मानने के खिलाफ जनमत तैयार करेंगे।
- कारपोरेट घरानों, एन.जी.ओ. और धार्मिक संस्थाओं को सार्वजनिक धन और अन्य जरूरी संसाधन (जमीन, भवन, उपकरण व अन्य सामग्री) स्थानांतरित करने और साथ ही इन्हें अधिकारिक मान्यता व नीतिगत समर्थन देकर शिक्षा में निवेशकों के रूप में इनकी भूमिका का वैधानीकरण करने के मकसद से बनाई गई सार्वजनिक–निजी साझेदारी (पी.पी.पी.) की खतरनाक नीतियों, प्रत्यक्ष या परोक्ष हर प्रकार के रूपों में, का मजबूती से प्रतिरोध करेंगे।
- सर्वोच्च न्यायालय के टी. एम. ए. पाइ फ़ाउंडेशन फैसले (2002) को पलटवाएंगे, चाहे न्यायिक प्रक्रिया चाहे यथोचित संवैधानिक संशोधन के जरिए।
- संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) में निम्नलिखित संशोधन करवाने के लिए संघर्ष करेंगे, "सभी नागरिकों को अधिकार होगा, कोई भी वृत्ति अपनाने, या कोई भी पेशा, व्यापार या कारोबार करने का, *बशर्ते कि पेशा, व्यापार या कारोबार करने का उक्त अधिकार शिक्षा, स्वास्थ्य, जल और जनता की अन्य मूलभूत जरूरतों के क्षेत्र में लागू नहीं होता हो।*"
- शिक्षा को बिकाऊ माल में तबदील करने के विश्व व्यापार संगठन–गैट्स के एजेंडे के अनुसार अभिजात् वर्ग हेतु उच्च शिक्षा का एक विशिष्ट क्षेत्र घरेलू व विदेशी पूंजी द्वारा मुनाफाखोरी के लिए 'खोलने' के मकसद से तैयार किए गए संसद में लंबित बाजार–उन्मुख सभी उच्च शिक्षा विधेयकों का प्रतिरोध करेंगे।
- विश्व व्यापार संगठन–गैट्स के तहत सरकार द्वारा की गई उच्च शिक्षा की पेशकश को, इससे पहले कि वह दोहा दौर[2] की वार्ताओं के पूरा

---

[2]विश्व व्यापार संगठन–गैट्स के तहत चल रही वैश्विक व्यापार की वार्ताओं का वर्तमान दौर।

होनेपर हमेशा के लिए बाध्यकारी बन जाए, वापस लेने के लिये सरकार को बाध्य करेंगे।

- शिक्षा की सार्वजनिक हितोपयोग की वस्तु (माल) के रूप में पुनर्स्थापना करेंगे।

2. पूर्व–प्राथमिक से बारहवीं कक्षा तक पूरी तरह 'राज्य'–वित्तपोषित पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल व्यवस्था की स्थापना

हम अपने मौजूदा बहुकोणीय संघर्ष को निम्नांकित आयामों व तरीकों से आगे बढ़ाने का संकल्प लेते हैं –

क) संवैधानिक व विधायी ढांचे में बदलाव के लिए जूझना

1. 86वें संविधान संशोधन अधिनियम (2002) की समीक्षा के लिए अभियान छेड़ना और, अगर जरूरत हो तो, सरकार पर इस बात का भी दबाव बनाना कि उक्त संशोधन को निरस्त करके उसकी जगह एक नया संवैधानिक संशोधन पारित किया जाए जिसमें 18 साल तक के सभी बच्चों को **बगैर किसी शर्त** के कक्षा 12वीं तक **पूरी तौरपर मुफ़्त** और **समतामूलक** गुणवत्ता की शिक्षा का मौलिक अधिकार दिया जाए जिसमें 6 साल से कम उम्र के बच्चों के लिए शिशु देखभाल और पूर्व–प्राथमिक शिक्षा भी शामिल हो। साथ ही, अनुच्छेद 51क (ट) को भी नए संशोधन के जरिए निरस्त किया जाए चूंकि इसके चलते 'राज्य' प्रारंभिक शिक्षा देने की अपनी संवैधानिक जवाबदेही को अभिभावकों के ऊपर खिसकाने में कामयाब हो गया है। आगे, इसी नए संशोधन में 'राज्य' पर उक्त संशोधन के लागू होने के दस साल के भीतर, उच्च शिक्षा (तकनीकी शिक्षा समेत) के समतामूलक अवसर सुनिश्चित करने की जवाबदेही भी डाली जाए।
2. भ्रामक एवं नवउदारवादी 'शिक्षा अधिकार कानून, 2009' को हटाकर उसकी जगह एक नया कानून बनवाने का संघर्ष करना जो (क) शिक्षा के संदर्भ में संविधान की प्रस्तावना के महत्व को सुस्पष्ट रूप से मान्यता दे; (ख) शिक्षा के मौलिक अधिकार को 'राज्य' के नीति निदेशक सिद्धांतों (खंड चार) में निहित संबंधित प्रावधानों के साथ समग्रता से जोड़कर सुनिश्चित करे; (ग) शिक्षा में पी.पी.पी. समेत बाजारीकरण के हर तरह के स्वरूपों पर प्रतिबंध लगाए; (घ) पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र, शिक्षा का भाषाई माध्यम, शिक्षकों और अध्यापक–शिक्षण के साथ सामाजिक पूर्वाग्रह और भेदभाव के विभिन्न स्रोतों के अंतर्संबंधों एवं शैक्षिक गुणवत्ता पर बाजार के

नकारात्मक प्रभावों को स्वीकारे; (च) विषमताओं को बाहर करे और विविधताओं को शामिल करे; (छ) 'राज्य' को साल–दर–साल गहराती संसाधनों की 'खाई' को पाटने और नई जरूरतों को पूरा करने हेतु पर्याप्त संसाधन मुहैया कसने के लिए कानूनी रूप से बाध्य करे; और इस तरह (ज) एक निश्चित समय–सीमा के भीतर पूरी तौरपर 'राज्य'–वित्तपोषित पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण करे।

3. कुपोषण, बाल–स्वास्थ्य की सुविधाओं के अभाव व असुरक्षित बचपन; बाल मजदूरी व शोषण; मानसिक व शारीरिक विकलांगता; भाषाई व सांस्कृतिक अधिकार और बाल अधिकारों, खासतौर पर शैक्षिक अधिकारों, के मुद्दों से संबंधित वर्तमान में लागू सभी संवैधानिक प्रावधानों और विभिन्न कानूनों की सार्वजनिक समीक्षा की मांग उठाई जाए एवं उनमें यथोचित संवैधानिक संशोधनों या कानूनी बदलावों के लिए सरकार पर व्यापक दबाव बनाने की कार्रवाई।
4. बाल मजदूरी पर स्पष्ट और पूर्ण प्रतिबंध लगाने के लिए सख्त कानून की मांग का आग्रह।
5. केंद्र और/या राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश सरकारों द्वारा कारपोरेट घरानों, एन.जी.ओ. और धार्मिक संस्थाओं को किसी भी सार्वजनिक शिक्षण संस्थान (सरकारी या स्थानीय प्राधिकार का) की जमीन, भवन, उपकरण या अन्य कोई सुविधा के हस्तांतरण, कारण चाहे कुछ भी हों, पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने हेतु कानून बनाने के लिए बाध्य करना। ठीक ऐसा ही कानून निजी शिक्षण संस्थाओं (चाहे वे सरकारी सहायता–प्राप्त हों या नहीं) और उन्हें संचालित करने वाली ट्रस्टों/सोसायटियों के लिए भी लागू हो क्योंकि इनकी संपत्ति का स्रोत शिक्षा के नाम पर विद्यार्थियों से ली गई फीस व सामुदायिक संसाधन ही हैं।
6. देश के बहुसंख्यक अभिभावकों के लिए अपर्याप्त पारिश्रमिक के मुद्दे की व्यापक समीक्षा की मांग उठाई जाए चूंकि कम आय के कारण अभिभावक अनुच्छेद 21 सहित अनुच्छेद 43 में प्राप्त गरिमामय जीवन के अधिकार, जीने लायक वेतन, बेहतर जीवन स्तर, विश्राम के पूर्ण अवसर और सामाजिक व सांस्कृतिक अवसरों से वंचित हो जाते हैं जिससे उनके बच्चे स्वस्थ व सुरक्षित बचपन (अनुच्छेद 39 ङ, च) और शिक्षा के अवसरों से वंचित होकर बाल मजदूरी करने या घरेलू गतिविधियों के लिए बाध्य हो जाते हैं।

7. देश में गर्भवती स्त्रियों व बच्चों के पोषण के निम्न स्तर को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को देखते हुए कि दुनिया में सर्वाधिक अल्प–विकसित बच्चे जो जीवन भर इस विकलांगता का शिकार रहते हैं, भारत में मौजूद हैं। हमारा मानना है कि आधे–अधूरे व तदर्थ उपायों से बच्चों के शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी बच्ची या बच्चा ऐसी विकलांगता के साथ पैदा न हो जो उसके जीवन और शिक्षा पाने के अवसरों को सीमित करे, 'राज्य' को ऐसा कानून बनाना चाहिए जो जरूरतमंद गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य और पोषण की पूरी सुरक्षा प्रदान करे।
8. केंद्र और राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश सरकारें अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए जनता से कई प्रकार के कर (टैक्स) लेती हैं और शिक्षा के लिए तो सभी करों के अतिरिक्त शिक्षा अधिभार (प्रारंभिक शिक्षा के लिए 2 फीसदी और माध्यमिक व उच्च शिक्षा के लिए 1 फीसदी) भी वसूलती हैं। इसके बावजूद लोगों को सरकारी व गैर–सरकारी, दोनों ही तरह की शैक्षिक संस्थाओं में फीस जमा करनी पड़ती है। कोई भी सरकार जो इस तरह की वसूली होने देती है उसे शासन करने का नैतिक अधिकार नहीं है। चूंकि शिक्षा एक संवैधानिक व लोकतांत्रिक अधिकार है, हम केंद्र सरकार से अपील करते हैं कि वह 'के.जी. से पी.जी. तक' किसी भी शिक्षण संस्थान में, चाहे वह सरकारी हो या निजी, किसी भी तरह की फीस वसूली पर स्पष्ट व पूर्ण प्रतिबंध लगाने के लिए कानून बनाए।
9. जब तक शिक्षा को राज्य सूची में वापस लाने ले लिए आम सहमति नहीं बनती है, तब तक शिक्षा के समवर्ती दर्जे का ऐसा उपयोग करने के लिए जनमत तैयार किया जाए जिससे एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, न्यायशील व प्रबुद्ध शिक्षा व्यवस्था के निर्माण की राष्ट्रव्यापी योजना में सभी राज्य व केंद्र–शासित प्रदेश योजना के प्रति अपनेपन के अहसास के साथ शामिल हों, न कि केंद्र के निर्णय को ही राज्यों/केंद्र–शासित प्रदेशों पर थोपा जाए जैसा कि अब तक होता आया है।

ख) सरकारी स्कूलों का संरक्षण व सुदृढ़ीकरण

1. सरकारी स्कूल व्यवस्था को कमजोर व विकृत करने वाली सभी नीतियों, कार्यक्रमों, बजटीय आबंटनों (खासकर कटौतियों) या समय–समय पर जारी होनेवाले सरकारी आदेशों का प्रतिरोध किया जाए।

2. मौजूदा भेदभावपूर्ण व बहुपरती स्कूल व्यवस्था, चाहे वह सरकारी क्षेत्र में हो या निजी में, को हटाकर उसकी जगह एक ऐसी व्यवस्था को खड़ी करने के लिए सरकार पर दबाव बनाया जाए जिसमें अधोसंरचना, शिक्षकों व अन्य कर्मचारियों, उपकरणों व शैक्षणिक सहायक सामग्री तथा शिक्षणेतर सुविधाओं के लिए समकक्ष मानदंड व मानक हों। इस दिशा में शुरूआत करने के लिए सभी स्कूलों में, चाहे वे निजी हों या सरकारी, ये मानदंड व मानक कम–से–कम केंद्रीय स्कूलों के समकक्ष कर दिए जाएं। इसके बाद स्कूलों को समतामूलक व परिवर्तनकामी शिक्षा के केंद्र बनाने के लिए जरूरी आगामी बदलावों के लिए संघर्ष को अगले चरण का मुद्दा बनाया जाएगा।
3. पाठ्यचर्या व शिक्षाशास्त्र, शिक्षा के भाषाई माध्यम, मूल्यांकन व आकलन (यानी, परीक्षा प्रणाली) और स्कूली माहौल में मूलभूत बदलावों और पुनर्निर्माण के लिए संघर्ष को आगे बढ़ाया जाए ताकि स्कूलों को, जैसा कि इस घोषणापत्र के शुरू में ही कहा गया है, लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक और प्रबुद्ध शिक्षा के केंद्रों में बदला जा सके (नीचे खंड 'घ' देखिए)।
4. घटते नामांकन, जिसका मूल कारण सरकारी स्कूल व्यवस्था की नीति–निर्देशित बदहाली है, का बहाना बनाकर सरकारी स्कूलों को बंद करने की राज्य सरकारों की जन–विरोधी नीति के खिलाफ लड़ाई खड़ी की जाए।
5. कई परीक्षा बोर्डों की जगह हरेक राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश में एक ही परीक्षा बोर्ड की मांग खड़ी की जाए। साथ ही बहु–भाषीयता के गतिशील संदर्भ में मातृभाषा के आधार पर समान भाषा शिक्षण नीति की मांग को सशक्त रूप से पेश करने की जरूरत है।
6. सरकारी स्कूलों में पी.पी.पी. की कार्रवाइयों और अंतर्राष्ट्रीय वित्तपोषक एजेंसियों, कारपोरेट घरानों, धार्मिक संस्थाओं और एन.जी.ओ. की दखलंदाजी और सरकारी स्कूल के भवनों या जमीनों को हथिया कर निजी स्कूल खोलने जैसी नीतियों का सख्त प्रतिरोध।
7. 'राज्य' की पहलकदमी पर उसके द्वारा अपनी संवैधानिक जवाबदेहियों से बरी होकर सरकारी स्कूलों और उनके विविध अत्यावश्यक क्रियाकलापों में 'एन.जी.ओ.–करण' को बढ़ावा देने के एजेंडे का पर्दाफाश और उसका प्रतिरोध।
8. स्कूलों में इस तरह की सहायक संरचनाएं और सुविधाएं स्थापित की जाएं जिसमें समुचित प्रशिक्षण–प्राप्त स्टाफ़ और साथ में सूचना–प्रौद्योगिकी व

अन्य तकनीकी साधन भी शामिल हैं, ताकि शारीरिक व मानसिक तौरपर विकलांग बच्चों के लिए नियमित कक्षाओं में बाकी बच्चों के साथ पूरी गरिमा के साथ पढ़ना, खेलना–कूदना और मजे करते हुए सीखना संभव हो सके। विकलांग बच्चों के लिए किसी भी तरह की 'गृह–केंद्रित शिक्षण व्यवस्था' की अधोगामी अवधारणा पर पूर्ण प्रतिबंध हो।

9. केंद्र व राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश सरकारों की संवैधानिक जवाबदेहियों के साथ बगैर कोई समझौता किए या उनको शिथिल किए, आम जनता, खासतौर पर अभिभावकों और पंचायती राज संस्थाओं, को इस दिशा में सक्रिय करना ताकि वे स्कूलों की मूलभूत अधोसंरचना, यथोचित अर्हतायुक्त, प्रशिक्षण–प्राप्त व वेतनमान पर जरूरी संख्या में नियुक्त शिक्षकों, पाठ्यचर्या–संबंधी व अन्य सुविधाओं एवं पौष्टिक मध्याह्न भोजन आदि पर निगरानी रख सकें और उनके लिए संघर्ष कर सकें, न कि शिक्षा अधिकार कानून, 2009 में विहित लचर और भेदभावपूर्ण मानदंडों व मानकों तक सीमित हो जाएं।
10. राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश सरकारों को इसकी कतई इजाजत न दी जाए कि वे शिक्षा अधिकार कानून, 2009 की अनुसूची में दिए गए घटिया मानदंडों व मानकों का बहाना लेकर शिक्षकों या अधोसंरचनात्मक सुविधाओं को इस आधार पर अन्यत्र स्थानांतरित करें कि ये उक्त अनुसूची के अनुसार अतिरिक्त हो गई हैं।
11. स्कूल से आगे की उच्च शिक्षा पाने की जन–आकांक्षाओं का आदर करते हुए, सरकार के ऊपर पर्याप्त संख्या में 'राज्य'–वित्तपोषित उत्तर–माध्यमिक संस्थाओं की स्थापना का दबाव बनाना होगा ताकि सभी प्रकार की समतामूलक व पूरी तौरपर मुफ़्त उच्च शिक्षा हासिल करने के अवसर बढ़ जाएं।
12. सरकारी स्कूल व्यवस्था के लिए बजट और सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) दोनों के प्रतिशत के रूप में वित्तीय आबंटन की लगातार बढ़ोतरी के लिये संघर्ष करना होगा ताकि 1986 की शिक्षा नीति से लेकर अब तक शैक्षिक निवेश की साल–दर–साल गहराती खाई को पाटा जा सके और समतामूलक शिक्षा व्यवस्था के निर्माण की अन्य सभी नई जरूरतें पूरी की जा सकें। साथ ही, यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यह बढ़ा हुआ बजटीय आबंटन पी.पी.पी. के जरिए निजी हाथों में स्थानांतरित न हो जाए।

ग) पूर्व–प्राथमिक से 12वीं कक्षा तक बच्चों का टिके रहना सुनिश्चित करना

1. स्कूल में बच्चों के लिए पोषक आहार (नाश्ता और दोपहर का खाना), स्वास्थ्य सुविधाएं, सांस्कृतिक व भावात्मक सुरक्षा, सामाजिक लैंगिक अधिकार, भाषाई अधिकार, विकलांगता–संबंधी अधिकार, भेदभाव–मुक्त माहौल और हर तरह के बाल शोषण से सुरक्षा, विशेष तौर पर लड़कियों के लिए, के रूप में समग्र समर्थक व्यवस्था के लिए संघर्ष करना होगा।
2. गरीब, बेरोजगार या रोजगार से वंचित, विस्थापित, प्रवासी व घुमंतू और विकलांग अभिभावकों/परिवारों को उनके बच्चों की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूरी होने तक आर्थिक सहयोग समेत अतिरिक्त और विशेष समर्थन देने की मांग का आग्रह करना जरूरी होगा।

घ) विषमताओं को बाहर करना, विविधताओं को शामिल करना : पूर्वाग्रहों व भेदभावों से जूझना

1. समान स्कूल व्यवस्था के जरिए सामाजिक बदलाव की ओर बढ़ने के लिए पड़ोसी स्कूल की रूपरेखा तय करते हुए उनमें शुरू से ही दलितों, आदिवासियों, अन्य पिछड़े वर्गों, धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यकों, महिलाओं और विकलांगों के सरोकारों को संरचनागत स्थान देना होगा।
2. वर्तमान शिक्षा अधिकार कानून, 2009 ने जानबूझकर पड़ोसी स्कूल की एक ऐसी भ्रांतिपूर्ण अवधारणा बनाई है जिससे 'राज्य' को मनमानी ढंग से उत्पीड़ित व वंचित वर्गों व जातियों के बहुसंख्यकों के पड़ोस में घटिया किस्म के स्कूल स्थापित करने की छूट रहेगी और इस तरह भेदभाव और यथास्थिति का वैधानिकरण होगा। इसकी तुलना में समान स्कूल व्यवस्था का पड़ोसी स्कूल एक परिवर्तनकामी अवधारणा है। इसका तकाजा एक ऐसे कानूनी प्रावधान का है जिसमें हरेक स्कूल का, चाहे वह सरकारी या निजी हो या स्थानीय निकाय का हो, एक पूर्वनिर्धारित विहित दायरा या पड़ोस होगा और उस दायरे में रह रहे सभी परिवारों के लिए कानूनन बाध्यकारी होगा कि वे अपने बच्चों को उसी स्कूल में भेजें, चाहे वे किसी भी वर्ग, जाति, लिंग, धर्म, भाषा या अंचल के हों या विकलांग हों। ऐसी स्थिति में जब किसी समुदाय विशेष के लोग बड़ी संख्या में खास इलाकों में बस जाते हैं (जैसे गांवों के दलित या आदिवासी मोहल्ले या शहरों में समुदाय विशेष के चिन्हित इलाके) तो यह लाज़मी होगा कि कानूनन विहित प्राधिकारी द्वारा स्कूलों के दायरे या पड़ोस का सीमांकन इस तरह करे कि उसमें अधिकतम विविधताओं को समेटा जा सके।

3. मौजूदा स्कूल व्यवस्था से अलग हटकर समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण इस तरह किया जाएगा कि विषमताओं को बाहर किया जा सके और हर तरह की विविधताओं को शामिल किया जा सके, बशर्ते कि विविधताओं को लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत जांचा–परखा और अधिकतम किया जा चुका हो।
4. उपर्युक्त उद्देश्य के लिए जरूरी है कि समान स्कूल व्यवस्था में से मौजूदा स्कूल व्यवस्था के केंद्रीकृत सोच, अपरिवर्तनीयता और लोचहीनता को बहिष्कृत करते हुए उसकी जगह विकेंद्रीकृत निर्णय प्रक्रिया, खुलापन और लोच शामिल किया जाए। इसके लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि 'राज्य' द्वारा वित्तपोषण किसी भी तरह से 'राज्य' द्वारा नियंत्रण का जरिया न बन जाए, जैसा कि आम तौरपर होता रहा है। नियंत्रण के बजाए 'राज्य' की भूमिका एक व्यापक नीतिगत ढांचा खड़ा करने की होगी। ऐसे व्यापक नीतिगत व पाठ्यचर्या के खाके के दायरे में समान स्कूल व्यवस्था का संचालन एक विकेंद्रीकृत (यह विश्व बैंक के मॉडल से एकदम हटकर है जिसमें विकेंद्रीकरण के बहाने बाजार के लिए जगह बनाई जाती है), लोकतांत्रिक और सहभागी प्रक्रिया के अनुसार होगा। केवल ऐसी व्यवस्था ही वह आवश्यक धरातल तैयार कर सकती है जहां सांस्कृतिक विविधता और ज्ञान के स्वरूपों एवं उत्पादक कुशलताओं की बहुलता को शिक्षण स्थलों और साथ में पाठ्यचर्या व शिक्षाशास्त्र में भी अपने लिए थाह मिल पाएगी।
5. वर्ग, जाति, लिंग, धर्म, भाषा, अंचल और विकलांगता के आधार पर समाज में व्याप्त पूर्वाग्रहों और भेदभावों के विभिन्न स्रोतों का पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र, शिक्षा के भाषाई माध्यम, शिक्षकों व अध्यापक शिक्षण जैसे मुद्दों और साथ ही शैक्षिक गुणवत्ता पर बाजार के नकारात्मक प्रभावों के अंतर्संबंधों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा में निम्नांकित सामाजिक–सांस्कृतिक व राजनीतिक बदलावों के लिए संघर्ष करना होगा –

   ✓ **पाठ्यचर्या व शिक्षाशास्त्र** – शिक्षा में भेदभाव और बहिष्करण का कारण सिर्फ बहुपरती स्कूल व्यवस्था ही नहीं बल्कि पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र में हावी वर्चस्ववादी धारणा भी है। मध्यम वर्ग और उच्च वर्णों के मूल्यों व मानदंडों, खासकर पितृसत्तात्मकता, में पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र की गहरी जड़ें होने के कारण उनका समाज के एक बड़े तबके के सामाजिक यथार्थ, अनुभवों, और सीखने के तौर–तरीकों से बेहद विमुखीकरण (अलगाव या कटाव) हुआ है। यही नहीं, निवेश के नए क्षेत्रों, प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकाधिक नियंत्रण और मुनाफे

की लगातार बढ़ती हुई गुंजाइशों को लेकर वैश्विक बाजार का दबाव भी बढ़ते क्रम में पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र को प्रभावित कर रहा है। शासक वर्ग और वैश्विक बाजार के हितों पर आधारित यह 'आधिकारिक ज्ञान' ही बड़े पैमाने पर शैक्षिक बहिष्करण और स्कूल से बच्चों के बाहर धकेले जाने की उच्च दरों का कारण है (ध्यान रहे कि बच्चे अपने–आप स्कूल नहीं छोड़ते वरन् बाहर धकेले जाते हैं)। समान स्कूल व्यवस्था का निर्माण तभी संभव है जब इस 'आधिकारिक ज्ञान' को चुनौती देते हुए आम जनता के बच्चों के ज्ञान और सीखने के तौर–तरीकों के साथ शिक्षाशास्त्रीय अंतःक्रिया को स्कूली पाठ्यचर्या में यथोचित जगह दी जाए। लेकिन यहां यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि इस 'आधिकारिक ज्ञान' के प्रतिरोध का एजेंडा, 'राज्य' द्वारा प्रगतिशील मूल्यों, तार्किक चिंतन और आलोचनात्मक विश्लेषण का प्रसार करने की उसकी जवाबदेही निभाए बगैर कतई पूरा नहीं हो सकता। संवैधानिक मूल्यों का 'राज्य' से तकाजा है कि वह पाठ्यचर्या के निर्माण के दौरान वर्ग, जाति, नस्ल, पितृसत्ता, भाषा और 'सामान्य' शरीर के वर्चस्वपूर्ण प्रभाव से जूझे और साथ में नवउदारवादी ढांचों व मूल्यों द्वारा इन प्रभावों को और भी मजबूत करने की प्रक्रिया का सचेत संज्ञान ले। जाहिर है, ऐसे बदलाव के लिए जरूरी होगा कि परीक्षा प्रणाली न तो औपनिवेशिक और ना ही तेजी से उभरते हुए नवउदारवादी मूल्यांकन की चौखट पर टिकी हो। मौजूदा स्कूल व्यवस्था के केंद्रीकृत सोच, अपरिवर्तनीयता और लोचहीनता पर सवाल उठाते हुए यह ध्यान में रखना होगा कि समान स्कूल प्रणाली का निर्माण तभी संभव है जब पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र को एक ऐसे नए प्रतिमान के अनुसार ढाला जाए जिसमें स्कूल व्यवस्था को अपने पक्ष में प्रभावित करने, ढालने और अंततः बदल देने के लिए "हम, भारत के लोगों" के मूल्यों, ज्ञान, उत्पादक कौशलों और जीवन शैलियों की बहुलता को वैधानीकृत थाह मिल पाएगी।

- ✓ **शिक्षा का भाषाई माध्यम** – अब वह समय आ गया है कि मैकॉले द्वारा अंग्रेजी को उच्च वर्गों और वर्णों के लिए "औपनिवेशिक, निर्देशन के माध्यम" के रूप में स्थापित किए जाने को मुकम्मल चुनौती दी जाए चूंकि इसके चलते भारतीय उप–महाद्वीप के ऐतिहासिक तौर पर वंचित और शोषित वर्गों व जातियों को और भी ज्यादा हाशिए पर धकेलना संभव हुआ है। इसलिए जरूरी है कि भेदभाव और बहिष्करण के इस औपनिवेशिक औजार को हटाकर शिक्षाशास्त्रीय रूप से सबसे उपयुक्त माने गए "*शिक्षा* के (न कि, *निर्देशन* के) माध्यम" या "सीखने

की भाषा" के तौरपर एक बहुभाषीय परिवेश में बच्चे की मातृभाषा की सार्वभौमिक अवधारणा को स्थापित किया जाए (यहां बहुभाषीयता के मायने बच्चे के आस–पड़ोस, रिश्तों व परिवार में इस्तेमाल की जाने वाली भाषाओं से है)। यह तय है कि बच्चे की मातृभाषा को उसके बहुभाषीय संदर्भ में 'शिक्षा के माध्यम' के रूप में देशभर के हरेक सरकारी और निजी स्कूल में तत्काल प्रभाव से लागू किया जाना एक सही नीतिगत कदम होगा। बच्चे के पड़ोस की बहुभाषीयता के साथ गतिशील रिश्ता बनाते हुए विभिन्न मातृभाषाओं की बहुलता, समान स्कूल व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण साझी पहचान होगी। इसी में ब्रेल और संकेतिक भाषा भी विधिवत शामिल होंगी। भाषा शिक्षण की इस परिवर्तनकामी और गतिशील अवधारणा के अनुसार बहुभाषीय रिश्ते के साथ मातृभाषा को शिक्षा के सबसे सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार्यता मिली है जो हर विद्यार्थी को इतना सक्षम बना सकती है कि वह खुद (क) सोच सके, विश्लेषण करे और फैसले ले सके; (ख) आधुनिक ज्ञान को आलोचनात्मक दृष्टि से हासिल करे, आत्मसात करे और बदल भी सके; (ग) अंग्रेजी सहित अन्य भाषाओं को निपुणतापूर्वक सीख सके; (घ) सांस्कृतिक और साहित्यिक नवजागरण को उत्प्रेरित कर सके; (च) अलगाव पैदा करने वाली वर्चस्वशाली प्रक्रियाओं से सहजता से जूझ सके और इस तरह बाहर धकेले जाने से अपने को सुरक्षित रख सके; और (छ) हर तरह के उत्पीड़न पर प्रश्न उठाकर उसका प्रतिरोध करते हुए मुक्ति के मार्ग को खोज सके।

चूंकि बच्चे की मातृभाषा संभवतः उस राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश की भाषा न हो, इसलिए समान स्कूल व्यवस्था का यह तकाजा है कि प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश की भाषा नीति में निम्नांकित प्रावधान अनिवार्यतः किए जाएं –

- भाषाई अल्पसंख्यकों की भाषाओं का पाठ्यचर्या की भाषा के रूप में समतामूलक विकास करने के लिए, कम–से–कम प्रारंभिक शिक्षा के शुरूआती वर्षों में, सभी जरूरी समर्थक सुविधाएं मुहैया कराई जाएं।
- ब्रेल और संकेतिक भाषा को 'भाषाई अल्पसंख्यकों की भाषा' का दर्जा देते हुए सूचना–प्रौद्योगिकी संबंधी तकनीक व यथोचित रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों/कर्मचारियों सहित सभी जरूरी

समर्थक सुविधाएं मुहैया कराई जाएं ताकि वे पाठ्यचर्या की भाषा के रूप में विकसित हो सकें।

- ऐसी यथोचित शिक्षण पद्धति विकसित की जाए ताकि भाषाई अल्पसंख्यक विद्यार्थियों के लिए उच्च माध्यमिक स्तर तक हर विषय में उस राज्य की भाषा में शिक्षा प्राप्त करने का विकल्प चुनना संभव हो सके; लेकिन जहां तक संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं का सवाल है, विद्यार्थियों के पास उनकी मातृभाषा में, उच्च शिक्षा सहित प्रत्येक स्तर पर, हर विषय की शिक्षा हासिल करने का विकल्प होना चाहिए; और
- किसी भी राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश द्वारा शिक्षा के माध्यम और भाषा शिक्षण के उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में, अगर जरूरी व वांछनीय हो तो, जनता की जरूरतों और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से उचित स्तर पर स्कूलों में अन्य भाषाओं को शामिल किया जा सकता है। ऐसा निर्णय लेने से पहले सरकारी व गैर–सरकारी संस्थाओं के जरिए व्यापक लोकतांत्रिक बहस का आयोजन करवाकर आम जनता से सलाह–मशविरा करना जरूरी होगा।

बहरहाल, केंद्र सरकार व राज्य/केंद्र–शासित प्रदेश सरकारों की यह संयुक्त जिम्मेदारी है कि वे भारतीय भाषाओं को ज्ञान अर्जन, नए ज्ञान को गढ़ने, सांस्कृतिक प्रगति करने और विकास के एक वैकल्पिक मॉडल को खोजने का सशक्त माध्यम बनाने के लिए निम्नलिखित अतिरिक्त और तात्कालिक कदम उठाएं –

- देशभर के सभी सरकारी और निजी स्कूलों में, उपरोक्त निहित भाषाई विविधता के साथ, एक साझी भाषा शिक्षा नीति लागू की जाए और एक सुनियोजित प्रक्रिया के तहत इसे तकनीकी शिक्षा सहित उच्च शिक्षा में भी लागू किया जाए।
- एक उच्च–स्तरीय, पूर्ण अधिकार–संपन्न व सभी जरूरी संसाधनों से लैस **राष्ट्रीय अनुवाद आयोग** की स्थापना की जाए जो कि संविधान की आठवीं अनुसूची की हरेक भाषा में उपलब्ध विभिन्न विषयों के श्रेष्ठ साहित्य, पाठ्य, दस्तावेज व शोध पत्रों का चयन करके उनका अन्य भारतीय भाषाओं में सीधे अनुवाद करे। साथ ही विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं से आठवीं अनुसूची की

भाषाओं में भी इस तरह का अनुवाद करे ताकि वैश्विक अधुनातन ज्ञान भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो सके।

- आठवीं अनुसूची की भाषाओं के उपयोग को विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, विज्ञान व प्रौद्योगिकी तथा व्यापार के प्रत्येक स्तर पर लागू करने का निश्चित समयबद्ध कार्यक्रम लागू किया जाए।
- सूचना प्रौद्योगिकी को सभी भारतीय भाषाओं के अनुकूल बनाने के लिए जरूरी राजनीतिक सरोकार बने और वित्तीय संसाधन प्राथमिकता बतौर मुहैया कराए जाएं ताकि इस क्षेत्र में, अंग्रेजी की तुलना में, भारतीय भाषाओं में सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के दौरान आ रही मौजूदा कठिनाई की धारणा और भेदभाव को खत्म किया जा सके।
- ऐसे सभी प्रकार के जरूरी कानून, कार्यक्रम व स्कीमें बनाई जाएं ताकि किसी भी नागरिक के प्रति उच्च शिक्षा एवं/या रोजगार के लिए उसकी मातृभाषा में उसके ज्ञान का मूल्यांकन करने के दौरान भेदभाव न हो और बहुभाषीयता के साथ मातृभाषा के जरिए ही सभी के लिए उच्च शिक्षा एवं/या रोजगार के समतामूलक अवसर उपलब्ध हो सकें।
- उपरोक्त प्रतिबद्धताओं के आधार पर **'भारतीय भाषाओं के लिए एक साझी राष्ट्रीय नीति'** का निर्माण हो और उसे लागू किया जाए।

✓ **शिक्षक और अध्यापक शिक्षण** – कोठारी आयोग (1966) ने यह घोषणा की थी कि, "भारत की नियति उसकी कक्षाओं में गढ़ी जा रही है।" अगर शिक्षक को 'कक्षा को गढ़ने' में अपनी निर्णायक भूमिका निभानी है तो इसके लिए उसको सर्वोच्च सामाजिक दर्जा देना होगा और सामाजिक विकास के महत्वपूर्ण काम के लिए उसे प्राथमिकता बतौर तैयार करना होगा। इसके लिए निम्नलिखित नीतिगत फैसले लेना निहायत जरूरी होगा –

➢ प्रत्येक शिक्षक, बिना किसी अपवाद के, पूरी तरह अर्हतायुक्त होना चाहिए और उसे यथोचित 'प्रशिक्षण' (यानी, अध्यापक शिक्षण) के बाद ही नियुक्त किया जाना चाहिए। साथ ही, हर शिक्षक को, उच्च सरकारी अधिकारियों की तरह, सामाजिक सुरक्षा सहित नियमित वेतनमान मिलना चाहिए जो पूरे देश में समतुल्य हो।

इसका साफ निहितार्थ है कि पंचायती राज संस्थाओं के जरिए कमतर अर्हता–प्राप्त, अप्रशिक्षित और कमतर वेतन पर ठेके बतौर 'पैरा–शिक्षक' नियुक्त करनेवाली 1990 के दशक के मध्य से लागू नवउदारवादी नीति को तात्कालिक प्रभाव से वापस लेना होगा[3]।

- किसी भी शिक्षक से, आपदाओं के अलावा, चुनाव, जनगणना या कोई भी अन्य गैर–अध्यापन काम कतई न करवाया जाए, यह हर हाल सुनिश्चित करने के लिए सभी जरूरी संवैधानिक संशोधन और कानून लागू करवाने होंगे। इसके मायने हैं कि शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत चुनाव व जनगणना जैसे गैर–अध्यापन कामों की जिम्मेदारी केवल सरकारी स्कूलों के शिक्षकों पर डालनेवाली शिक्षा–विरोधी व भेदभावपूर्ण धारा 27 के प्रावधान को तुरंत निरस्त किया जाए। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि चुनाव व जनगणना की लोकतंत्र और देश के विकास में निर्णायक भूमिका है और कम–से–कम पर्यवेक्षण के लिए (चाहे परिचालन के लिए नहीं) शिक्षकों को जोड़ना हर हाल जरूरी है। ऐसी स्थिति में यह प्रावधान सरकारी या निजी हर तरह के स्कूल, सहायता–प्राप्त या सहायता–विहीन, के शिक्षकों पर देशभर में बराबरी से लागू होना चाहिए ताकि सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों को अध्ययन के मामले में भेदभाव का सामना न करना पड़े।
- समान स्कूल प्रणाली के परिवर्तनकामी एजेंडा को लागू करने के लिए जरूरी है कि सांस्कृतिक बदलाव के माध्यम से ऐसे नए शिक्षक तैयार किए जाएं जो गरीब और वंचित वर्गों व जातियों के बच्चों, खासतौर पर लड़कियों और विकलांगों, से गरिमामय ढंग से जुड़ सकें और ऐसे बच्चों के जीवन अनुभवों व ज्ञान को कक्षा में लाने पर उभरनेवाली पाठ्यचर्या–संबंधी व शिक्षाशास्त्रीय चुनौतियों से जूझ सकें। इसके लिए आवश्यक होगा कि सभी मौजूदा अध्यापक–शिक्षण कार्यक्रमों (यथा, प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा, बी. एड., एम. एड. एवं हाल में लागू 'अध्यापक अर्हता परीक्षण') में आमूलचूल संरचनात्मक बदलाव लाए जाएं और सभी

---

[3]हालांकि इस नीतिगत बदलाव की लड़ाई के साथ उन शिक्षकों के हकों की लड़ाई भी लड़नी होगी जिन्हें 'पैरा–शिक्षक' की दोषपूर्ण नवउदारवादी नीतियों के तहत पूर्व में नियुक्त किया गया था। ऐसे तमाम शिक्षकों को समतुल्य सामाजिक सुरक्षा व नियमित वेतनमान सहित नियुक्त करने के लिए उनके शैक्षिक अनुभव के मद्देनजर यथोचित अर्हता बढ़ाने व अध्यापक शिक्षण देने की न्यायपूर्ण व्यवस्था करके सम्मानजनक तरीके से समायोजित करवाने की लड़ाई प्राथमकिता बतौर लड़नी और जीतनी होगी।

अध्यापक–शिक्षण संस्थानों को शिक्षाशास्त्रीय सृजनात्मकता और सांस्कृतिक बदलाव के 'राज्य'–वित्तपोषित केंद्रों में बदला जाए। जाहिर है कि ऐसी व्यवस्था में सरकार द्वारा निजी क्षेत्र में प्रोत्साहित की जा रही निजी मुनाफाखोर व्यावसायिक संस्थाओं के लिए कोई जगह नहीं होगी।

- उपरोक्त अध्यापक–शिक्षण संस्थाओं के निर्माण के लिए मौजूदा विश्वविद्यालयों व कालेजों में, जहां ऐसे शिक्षक तैयार होंगे, आमूलचूल बदलाव लाने निहायत जरूरी होंगे और साथ ही इसके लिए जरूरी वित्तीय संसाधन उपलब्ध करने हेतु 'राज्य' द्वारा नए सिरे से अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करने की भी जरूरत होगी।

3. शैक्षिक बदलाव के लिए जनांदोलन का निर्माण

इस घोषणापत्र में अब तक के विशद विश्लेषण से साफ है कि 'राज्य' ने अपनी संवैधानिक जवाबदेहियों से पल्ला झाड़ने और निरंकुश वित्तीय पूंजी व लालची वैश्विक बाजार की साम्राज्यवादी ताकतों के पक्ष में खड़ा होने का फैसला कर लिया है। 19वीं सदी के मध्य से जारी 'के.जी. से पी.जी.' तक 'राज्य'–वित्तपोषित समतामूलक शिक्षा व्यवस्था की लड़ाई का इतिहास और पिछले दो दशकों में 'राज्य' द्वारा तेजी से किए गए नए नवउदारवादी हमले हमारे सामने कोई और विकल्प नहीं छोड़ते सिवाए इसके कि व्यापक जनचेतना पर आधारित देशव्यापी जनांदोलन का निर्माण किया जाए। हमारे हालिया अनुभवों ने यह भी साबित कर दिया है कि सरकारी समितियों या आयोगों में शामिल होकर तार्किक विमर्श के जरिए नीतिगत बदलावों के लिए 'राज्य' से बातचीत करने या उसको प्रभावित करने की लोकतांत्रिक गुंजाइश पूरी तौरपर खत्म हो चुकी है। इसलिए आज के दौर की लोकतांत्रिक व्यवस्था में शांतिपूर्ण प्रतिरोध का आंदोलन, संविधान–सम्मत चौखट के भीतर हर हाल वैधानिक होगा।

हमारे संघर्ष के लक्ष्यों को निम्नलिखित तीन आयामों में समझा जा सकता है :

1. **राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के निर्माण का परिवर्तनकामी ध्येय,** ताकि 'के.जी. से पी.जी.' तक पूरी तरह मुफ्त और 'राज्य'–वित्तपोषित शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया जा सके जो सभी भेदभावों को खत्म कर सके और बहुलताओं को समेटते हुए लोकतांत्रिक, समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष और प्रबुद्ध शिक्षा प्रदान करने में सक्षम हो।

2. **नवउदारवादी हमलों के खिलाफ तात्कालिक मांगें,** जैसे कि मौजूदा शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 की जगह पड़ोसी स्कूल पर आधारित 'राज्य'–वित्तपोषित समान स्कूल व्यवस्था को लागू करनेवाला कानून बनवाने, हर तरह के सार्वजनिक–निजी–भागीदारी (पी.पी.पी.) के खात्मे या फिर संसद में लम्बित बाजारोन्मुखी उच्च शिक्षा विधेयकों को व्यापक राष्ट्रीय बहस होने तक स्थगित करवाने की लड़ाई।
3. **राष्ट्र–स्तरीय परिवर्तनकामी ध्येय के तहत महत्वपूर्ण तत्व** जिनमें राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के निर्माण की पूर्व–शर्त के रूप में शिक्षा के बाजारीकरण पर प्रतिबंध की मांग, हर तरह के बालश्रम के खात्मे की मांग और सभी सरकारी स्कूलों के स्तर को शुरूआती दौर में केंद्रीय स्कूलों के मानदंडों व मानकों के समकक्ष लाने की मांगें शामिल है।

इस संघर्ष को तीन चरणों में रखकर देखा जाना चाहिए :

- शुरूआती दौर में, जो भी थोड़े बहुत मौजूदा अधिकार हैं उन पर हो रहे नए हमलों के खिलाफ हमें लड़ाई लड़नी होगी – जैसे कि, सरकारी स्कूलों को बंद करने के राज्य सरकारों के आदेशों को पलटवाना, सरकारी स्कूल परिसरों या उसपर खड़ी सुविधाओं को पूरी तौरपर या आंशिक रूप से निजी हाथों में सौंपे जाने की कार्रवाइयों का प्रतिरोध करना या फिर उच्च शिक्षा में विश्व व्यापार संगठन–गैट्स के एजेण्डा के लिए रास्ता खोलनेवाले संसद में लंबित विधेयकों के खिलाफ जनमत तैयार करना।
- हमें राष्ट्र–स्तरीय परिवर्तनकामी ध्येय के तहत महत्वपूर्ण तत्वों की ओर बढ़ने के लिए विभिन्न मांगों की पूर्ति हेतु संघर्ष करने होंगे (उदा., देखिए उपरोक्त सूची)।
- पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल व्यवस्था सहित 'के.जी. से पी. जी.' तक 'राज्य'–वित्तपोषित समान शिक्षा व्यवस्था की स्थापना के परिवर्तनकामी ध्येय के लिए हमें दीर्घकालिक संघर्ष की तैयारी भी करनी होगी।

ये सभी संघर्ष हमें एक ही साथ तीन स्तरों पर यथा, राष्ट्रीय स्तर, राज्य या जिला स्तर पर और विभिन्न शैक्षिक संस्थानों के स्तर पर उभरते हुए मुद्दों और जनमत को कारगर तौरपर जुटाने व आंदोलित करने की संभावनाओं एवं हमारी क्षमता के मद्देनजर चलाने होंगे।

विद्यार्थी संगठनों, शिक्षक संघों व अन्य जन संगठनों की भूमिका

औपनिवेशिक शासन के दौरान देश की जनता लोकतांत्रिक, समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष और देशभक्त शिक्षा व्यवस्था के लिए लगातार संघर्ष करती रही। लोगों को उम्मीद थी कि आजादी के बाद ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया जाएगा। लेकिन कुल मिलाकर जनता की इन उम्मीदों पर पानी फेर दिया गया। यही वजह है कि आजादी के बाद भी ऐसी शिक्षा व्यवस्था के लिए संघर्ष जारी रहा जिसमें बिना किसी भी प्रकार के भेदभाव के समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा सबको हासिल हो, जो अभिवंचित वर्गों की सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दे और सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को उत्प्रेरित करे। हालांकि उच्च शिक्षा पर राधाकृष्णन आयोग की रिपोर्ट (1948), माध्यमिक शिक्षा पर मुदालियर आयोग की रिपोर्ट (1952) और पूरी शिक्षा व्यवस्था पर कोठारी आयोग की रिपोर्ट (1966) से लोगों को कुछ राहत जरूर मिली लेकिन इन रिपोर्टों की जनपक्षधर अनुशंसाओं को ईमानदारी से लागू नहीं किया गया। इसके उलट, 1980 के दशक से केंद्र सरकार ने, राज्य सरकारों की मिलीभगत से, जो थोड़े–बहुत शैक्षिक अधिकार संघर्ष की बदौलत मिल पाए थे उन पर भी नए सिरे से हमले शुरू कर दिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 में संशोधित) के जरिए शिक्षा पर चौतरफा हमला बोला गया। इस नीति ने निजीकरण, उच्च शिक्षा के अभिजात्यकरण, समानांतर बहुपरती स्कूल व्यवस्था, रोजगारपरक शिक्षा के नाम पर प्रारम्भिक स्तर के बाद शिक्षा को कौशल निर्माण का पर्याय बनाना, शैक्षिक परिसरों के लोकतंत्र पर हमला और, इनसे भी कहीं ज्यादा खतरनाक, 'भारतीय लोकाचार' के बहाने दकियानूसी विचारों को शिक्षा में शामिल करने जैसे तमाम अधोगामी कदमों को संस्थागत मान्यता दी। कई विद्यार्थी व शिक्षक संगठनों और समाज के विभिन्न लोकतांत्रिक तबकों ने इन विकृतियों के खिलाफ नए संघर्ष छेड़े। जबकि अलग–अलग केंद्र सरकारें शिक्षा के निजीकरण को लगातार बढ़ावा देती रहीं, वहीं दूसरी ओर 1990 के दशक में केंद्र और राज्य दोनों ही स्तरों पर भाजपानीत सरकारों ने शिक्षा के बाजारीकरण के साथ–साथ सांप्रदायीकरण के भी कदम उठाए। बाजारीकरण, सांप्रदायीकरण व नीति निर्माण में केंद्रीकरण और शैक्षिक परिसरों में लोकतंत्र के खात्मे के खिलाफ संघर्ष आज भी जारी है।

इसी तर्ज पर आगे बढ़ते हुए, चेन्नई घोषणापत्र विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों और समाज के विभिन्न तबकों के सभी लोकतांत्रिक संगठनों का आह्वान करता है कि वे लोकतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था की स्थापना के हमारे चिरप्रतीक्षित ध्येय के हासिल होने तक शैक्षिक अधिकारों के संरक्षण, पुनर्स्थापन और विस्तार के लिए अपने संघर्षों को और भी तेज करें। मौजूदा हालात में सरकारी व स्थानीय

निकायों द्वारा संचालित एवं सरकार द्वारा अनुदान–प्राप्त संस्थाओं के शिक्षकों और शिक्षक संगठनों की एक खास जवाबदेही बनती है। एक तरफ तो, इन संस्थाओं में जरूरी समर्थक सुविधाओं और काम के माहौल में गिरावट के बावजूद जनता उनसे यही उम्मीद करती है कि वे अपनी नैतिक जिम्मेदारी का पूरी प्रतिबद्धता के साथ वहन करेंगे ताकि वे बच्चों और युवाओं को न सिर्फ शिक्षित करें बल्कि उनमें लोकतांत्रिक, समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष व अन्य प्रगतिशील मूल्यों को स्थापित भी कर पाएं। वहीं दूसरी तरफ, उनसे यह भी अपेक्षा है कि वे शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के संघर्ष को आगे बढ़कर नेतृत्व दें। इन जन–आकांक्षाओं को पूरा न करना सरकारी शिक्षा व्यवस्था पर हो रहे नवउदारवादी हमले के जाल में फंस जाने जैसा होगा।

हम अभिभावक संगठनों का भी आह्वान करते हैं कि वे अपने संघर्ष को सिर्फ निजी स्कूलों द्वारा की जा रही मनमानी व अनुचित फीस वृद्धि तक ही सीमित न रखें बल्कि निजी शैक्षिक संस्थानों में विद्यार्थियों और शिक्षकों के अधिकारों के लिए भी आवाज बुलंद करें। अभिभावक संगठनों को यह भी समझना होगा कि बाजार, अच्छी शिक्षा का जरिया कतई नहीं हो सकता है। निजी संस्थान कमोबेश शिक्षा को ज्ञान, मूल्यों व सामाजिक सरोकारों से काट कर महज परीक्षाओं में प्राप्तांकों या ऐसे अन्य सूचकांकों का पर्याय बनाकर बच्चों व युवाओं को भ्रामक शिक्षा देते हैं। अगर निजी शैक्षिक संस्थानों के अभिभावक संगठन सरकारी संस्थानों के अभिभावकों के साथ संबंध बनाएं और उनके साथ एकजुट होकर शिक्षा व्यवस्था में बदलाव की लड़ाई को आगे बढ़ाएं तो यह समाज की एक अहम सेवा होगी। तमिलनाडु में निजी शैक्षिक संस्थानों के अभिभावक संगठनों ने फीस वृद्धि के खिलाफ चलाए गए अपने संघर्ष को समान स्कूल व्यवस्था के संघर्ष में बदल कर देश के सामने एक प्रेरणादायक मिसाल पेश की है।

विद्यार्थी संगठन इस आंदोलन के अग्रगामी संदेशवाहक की भूमिका निभाते हुए सामाजिक बदलाव के लोकतांत्रिक संघर्ष के लिए जनता को लामबंद करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में उत्प्रेरक ('दही में जामन') बन सकते हैं। हम सभी प्रगतिशील बुद्धिजीवियों से यह अपील करते हैं कि वे 'राज्य' के छद्म 'समावेशी (इन्क्ल्यूज़िव) एजेंडे' के प्रपंच में फंसने की जगह आम जनता के शैक्षिक अधिकारों को हासिल करने के इस आंदोलन से जुड़ें। यह घोषणापत्र इस हकीकत को तहेदिल स्वीकारता है कि शैक्षिक अधिकारों के संघर्ष को जनता द्वारा देश भर में **जल–जंगल–जमीन और जीविका के लोकतांत्रिक हकों** पर हो रहे नवउदारवादी हमलों के खिलाफ चलाए जा रहे संघर्षों से जुड़ना होगा।

आशा और विश्वास के साथ भविष्य की ओर

इसमें कोई शक नहीं कि हमारे खिलाफ खड़ी वित्तीय पूंजी और वैश्विक बाजार की साम्राज्यवादी ताकतें बेहद शक्तिशाली हैं। लेकिन इतिहास का यह सबक हमारे साथ है कि जनता की इच्छा को दरकिनार करके कोई भी प्रभुत्वपूर्ण सत्ता, चाहे वह कितनी ही ताकतवर क्यों न हो, ज्यादा दिन तक नहीं टिक पाई है। पिछले दो दशकों से सरकार द्वारा बहुप्रचारित पहले दौर के 'सबके लिए शिक्षा', 'शिक्षा गारंटी' व 'सर्व शिक्षा अभियान' और अब 'शिक्षा का अधिकार', 'सूचना का अधिकार', 'भोजन का अधिकार' तथा 'समावेशी विकास' जैसे मनलुभावने नारों से बेशक जनता कुछ देर के लिए भ्रमित हो गई हो लेकिन जल्द ही उसका यह भ्रम टूटेगा और तब जनता खुद–ब–खुद समझ जाएगी कि ऐसे खोखले नारों से न तो कोई गारंटी मिली न अधिकार और न ही समावेशन (इन्क्ल्यूज़न) हुआ। दरअसल, इसके उलट, इन नारों की आड़ में राजसत्ता ने जनता को इन सबसे न केवल वंचित किया लेकिन कई मायनों में जो थोड़ा–बहुत मिल भी रहा था वह भी छीन लिया। इसलिए हमारी रणनीति होगी कि हम जनता के बीच जाएं, उनसे सीखें और इसके बदले में उन्हें शिक्षित करें और नवउदारवादी नीतियों, कानूनों व कार्यक्रमों के चलते जो विविध संघर्ष खड़े होंगे उनसे उन्हें जोड़ें। साथ ही, अपने संघर्ष की क्रांतिकारी संभावना के प्रति सचेत रहते हुए तय है कि हम समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा के अधिकार और लोकतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था की लड़ाई को पूरी तरह जीते बगैर पीछे नहीं हटेंगे, चाहे, आखिरकार, इसका अर्थ होगा कि इस क्रूर नवउदारवादी व्यवस्था को ही पूरी तरह उखाड़कर फेंकना पड़े। हमें यकीन है की हमारी जीत ही संघर्ष की अगली मंजिल है!

———————

शिक्षा अधिकार मंच, भोपाल
द्वारा चेन्नई सम्मेलन में ले जाई गई तीन मशालें
– मशालों के साथ गए तीन पोस्टर (अगले तीन पृष्ठों में)

पहली मशाल

19वीं और 20वीं सदी में भोपाल रियासत की तीन बेगमों को समर्पित जिन्होंने उस समय के सामंती व औपनिवेशिक दौर से कहीं आगे जाकर अद्‌भुत दूरदृष्टि के साथ रियासत के शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में सभी मजहबों व जातियों (खासकर लड़कियों) के लिए शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का कानून बनाने की पहलकदमी की।

दूसरी मशाल

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अंबेडकर को समर्पित जिन्होंने न केवल सदियों से उत्पीड़ित जातियों को समानता और गरिमा के लिए संघर्ष करने की हिम्मत दी और मुक्ति का रास्ता दिखाया लेकिन उससे भी आगे बढ़कर एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, न्यायशील व प्रबुद्ध भारत के निर्माण के लिए संविधान रचने में अग्रणी भूमिका निभाई जिसके कारण आज पूरा देश उन्हें आधुनिक भारत के द्रष्टा के रूप में याद करता है।

तीसरी मशाल

मध्यप्रदेश की सरकारी स्कूल व्यवस्था में 1972 से 2002 तक संचालित 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' को समर्पित जिसने 1,000 मिडिल स्कूलों में विद्यार्थियों द्वारा अपने हाथों से वैज्ञानिक प्रयोग करके विज्ञान सीखना संभव बनाकर सरकारी स्कूल व्यवस्था की सृजनात्मक और लोचदार प्रबंधकीय, वित्तीय व शिक्षाशास्त्रीय ढांचे खड़े करने की परिवर्तनशील क्षमता का सबूत पेश किया जिसके कारण वह आज की बाजारवादी शिक्षा नीति के सामने एक चुनौती के रूप में खड़ा हुआ है।

कुदसिया बेगम
(1819 - 1837)

सिकन्दर बेगम
(1844 - 1868)

शाहजहाँ बेगम
(1868 - 1901)

सुल्तानजहाँ बेगम
(1901 - 1926)

"मेरे ज़ेहन से , तालीम ही औरत का सबसे अच्छा ज़ेवर होता है।"

"शायद हम यह भूल गए हैं की औरतें आधी कौम हैं और असली तरक्की हासिल नहीं होगी अगर इस अहम जमात की तालीम की ज़रूरतों को नजरंदाज किया गया।"

-सुल्तान जहाँ बेगम

भोपाल की बेगमों द्वारा की गई महत्वपूर्ण शैक्षणिक पहल:

- 1860 में रियासत का सबसे पहला नियमित स्कूल खोला गया।
- 1871 में दरबार से आदेश जारी किया गया कि लोगों को उनके बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- 1903 में सुल्तानिया गर्ल्स स्कूल खोला गया जो देश में मुस्लिम लड़कियों के लिए पहला स्कूल था।
- बिरजीसिया कन्या पाठशाला सभी जाति और धर्म की लड़कियों के लिये खोली गई।
- मदरसा-ए-बिलकीसिया व प्रिन्स ऑफ वेल्स स्कूल, अनाथ और गरीब बच्चों के लिये।
- आसिफा मेडिकल स्कूल की स्थापना जिसमें यूनानी चिकित्सा पद्धति में आधुनिक शरीर-विज्ञान और सर्जरी की शिक्षा दी जाती थी।
- विधवा और गरीब औरतों के लिये विभिन्न कलाएं एवं शिल्प सीखने के लिए स्कूल खोले गए ताकि वे आत्मनिर्भर हो सकें।
- बेनज़ीर महल में पब्लिक लायब्रेरी खोली गई, जिसे आज सेंट्रल लाइब्रेरी कहा जाता है।
- राज्य के हर परगना में स्कूल खोले गये ताकि मुस्लिम और हिन्दू, दोनो समुदायों के लोग शिक्षित हो सकें।
- राज्य के हरेक बड़े गाँव में पाठशाला खोली गई।
- 1918 में भोपाल रियासत के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का कानून पारित हुआ।
- सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को अच्छा वेतन और मुफ्त जमीन दी जाती थी।
- 1920 में सुल्तान जहाँ बेगम अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पहली चान्सलर बनाई गईं।
- सुल्तानजहाँ बेगम पहले अखिल भारत शिक्षा सम्मेलन की अध्यक्ष बनी।

आइये, हम अपनी इस विरासत से सबक सीखें -

भोपाल की बेगमों का सभी लोगों तक तालीम के प्रचार प्रसार का सपना तभी पूरा हो पाएगा जब देश में सरकार द्वारा स्थापित समान स्कूल व्यवस्था कायम की जाएगी।

बाबासाहेब डॉ.बी.आर.अम्बेडकर

14 अप्रैल 1891 महू, मध्य प्रदेश में जन्मे

सदियों से शोषण और दमन की जंजीरों में जकड़े गए आवाम के बीच में से उभर कर उसे अपनी गरिमा और आजादी को हासिल करने के संघर्ष का रास्ता दिखाया।

डॉ. अम्बेडकर का यह उद्घोष करोड़ो लोगों को आज भी प्रेरित करता है–

शिक्षित बनो! संघर्ष करो!! संगठित हो!!!

संविधान के निर्माता, जिन्होंने देश को नया नज़रिया दिया:

एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक और प्रबुद्ध समाज के निर्माण का नज़रिया जहाँ देश की विविध संस्कृतियों, धर्मों, भाषाओं और समुदायों को समानता, सहभागिता, सामाजिक न्याय और गरिमा के साथ रहने और फलने–फूलने का पूरा मौका और आजादी हो!

बेशक,

डॉ. अम्बेडकर आधुनिक भारत के द्रष्टा थे!!

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) मध्य प्रदेश (1972–2002)

प्रयोगों के जरिये मध्य प्रदेश के 14 जिलों के लगभग 1000 विद्यालयों में कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों को विज्ञान सिखाने का अनूठा उदाहरण। सन् 1990 के दशक के आसपास तक इन सरकारी स्कूलों में लगभग एक लाख बच्चे रोज वैज्ञानिक तरीके व सोच के जरिये इस शिक्षण पद्धति से विज्ञान सीख रहे थें। दिल्ली विश्वविद्यालय, टी.आई.एफ.आर., आई.आई.टी. व सरकारी कॉलेजों के अध्यापकों के द्वारा 'होविशिका स्रोत समूह' के गठन के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विशेष प्रावधान खड़े किये। इस समूह ने 30 साल तक मध्य प्रदेश के ग्रामीण स्कूलों में काम किया!

वैज्ञानिक चेतना से लैस ऐसा बदलाव किसी भी निजी स्कूल व्यवस्था ने न तो होविशिका के पहले और ना ही उसके बाद लाने की हिम्मत की है!

होविशिका ने यह साबित कर दिया कि सरकारी स्कूल व्यवस्था –

- शिक्षण-पद्धति और पाठ्यचर्या की नयी चुनौतियों को रचनात्मकता, लोच और तत्परता के साथ अपनाने की क्षमता रखती है;
- नये विचारों को आगे बढ़ाने के लिये प्रबंधन के नए ढांचे खड़े कर सकती है;
- परीक्षा-प्रणाली में भी रचनात्मक बदलाव की गुंजाइश रखती है;
- केंद्र सरकार या विदेशी सहायता की मदद के बगैर भी राज्य सरकार अपने बजट से अतिरिक्त संसाधन जुटा सकती है;
- शिक्षकों को नये ज्ञान को सीखने, पुरानी और गलत धारणाओं को छोड़ने और नवाचार करने के साथ-साथ, अध्यापक-प्रशिक्षक की भूमिका की भी आजादी दे सकती है;
- अन्य राज्यों में भी बदलाव लाने के रास्ते दिखा सकती है; एवं
- अंतरराष्ट्रीय स्तर परप्रेरणा का स्रोत बन सकती है।

लेकिन, इन सबके बावजूद सरकार ने 30 साल से चल रहे इस प्रयोग को बिना कारण बताए सन् 2002 में बंद करने का तुगलकी फरमान जारी कर दिया।

आखिर क्यों?

क्या विश्व बैंक के दबाव के आगे सरकार मजबूर हो गई थी?

क्या सरकारी स्कूल व्यवस्था की इस गजब की क्षमता का कोई और सबूत चाहिये?

हम 'शिक्षा अधिकार कानून, 2009' का विरोध क्यों करते हैं?

1. केवल इसलिए नहीं कि,

- यह 6 साल से कम आयु वाले बच्चों के 'शिशु देखभाल एवं पूर्व–प्राथमिक शिक्षा' के अधिकार को नकारता है।
- यह 14 से 18 साल की आयु वाले बच्चों के माध्यमिक (कक्षा 9–10) और उच्च माध्यमिक (कक्षा 11–12) शिक्षा के अधिकार को नकारता है।

2. लेकिन इसलिए कि,

- यह 6–14 आयु समूह के बच्चों को भी समतामूलक गुणवत्ता की प्रारंभिक शिक्षा (कक्षा 1–8) का अधिकार नहीं देता।
- यह 6–14 आयु समूह के बच्चों को स्कूल में टिकाए रखने और उनकी नियमित भागीदारी पुख्ता करने के लिए न तो आवश्यक समर्थक ढांचे खड़े करता है और न ही तयशुदा सुविधाएं देता है।
- यह न तो सरकारी स्कूलों को विकसित करता है और न ही निजी स्कूलों का नियमन (रेग्यूलेशन) करता है।

3. और भी बड़ा कारण है कि,

- यह निजी स्कूलों के प्रबंधकों को मनमाने ढंग से फीस बढ़ाने की छूट देता है और इस तरह शिक्षा के बाजारीकरण की रफ़्तार को तेज करता है।
- यह मुट्ठीभर कमजोर वर्ग के बच्चों की फीस प्रतिपूर्ति के नाम पर निजी स्कूलों को सार्वजनिक धन स्थानांतरित करता है।
- यह फीस प्रतिपूर्ति की स्कीम लागू करके स्कूली शिक्षा के बेलगाम बाजारीकरण के लिए दरवाजे खोल देता है।
- यह न केवल मौजूदा बहुपरती एवं गैर–बराबर स्कूल व्यवस्था को कानूनी जामा पहनाता है लेकिन साथ में शिक्षा के विभिन्न आयामों में गैर–बराबरी और भेदभाव को भी और आगे बढ़ाता है।
- यह अंततः सरकारी स्कूलों को बंद करने के रास्ते खोलता है और स्कूल व्यवस्था को जनता की चिरप्रतीक्षित समान स्कूल व्यवस्था से ठीक उल्टी दिशा में धकेलता है।

चेन्नई / 30 जून 2012

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच (अभाशिअम)
फोन – (040) 2330–5266; मो. – 09440980396; ईमेल – aifrte.secretariat@gmail.com

सबको शिक्षा एक समान
मांग रहा है हिंदुस्तान!!

सहयोग राशि – पंद्रह रुपए मात्र